

August 2019

Bulletin of Sri Aurobindo
International Centre of Education

श्रीअरविन्द अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा-केन्द्र पत्रिका

(हिन्दी-विभाग) अगस्त २०१९



श्रीअरविन्द आश्रम
पॉण्डिचेरी, भारत

बुलेटिन अगस्त २०१९

विषय-सूची

पथ का विधान	श्रीअरविन्द	३
एक बालक को पत्र	'श्रीमातृवाणी', खण्ड १६ से	५
अतिमानस को नीचे उतारना	श्रीअरविन्द	१३
सच्ची निष्कपटता	'श्रीमातृवाणी', खण्ड १५ से	१५
कठिनाइयाँ तथा अन्धकार	श्रीअरविन्द	१६
२६ नवम्बर १९५८ का वार्तालाप	'श्रीमातृवाणी' खण्ड ९ से	१७
एक आध्यात्मीकृत समाज	श्रीअरविन्द	२०
१९ अगस्त १९५३ के वार्तालाप का कुछ अंश	'श्रीमातृवाणी' खण्ड ५ से	२२
श्रीअरविन्द के उत्तर (७३)	श्रीअरविन्द	२५

पथ का विधान

पहले पुकार और अपनी अन्तरात्मा के उत्तर के बारे में निश्चित हो। क्योंकि अगर पुकार सच्ची नहीं है, भगवान् की शक्तियों का स्पर्श या उनके सन्देशवाहकों की आवाज़ नहीं है बल्कि तेरे अहंकार का प्रलोभन है तो तेरे प्रयास का अन्त तुच्छ आध्यात्मिक असफलता या घोर विपत्ति में होगा।

और अगर भगवान् के बुलावे का उत्तर अन्तरात्मा का भक्तिभरा उत्साह नहीं केवल मन की स्वीकृति या रस देता है या निचले जीवन की कामना योग-शक्ति के या योग से मिलने वाले सुख के फल के किसी गौण आकर्षण को पकड़ लेती है, या फिर अगर पुकार की तीव्रता मधुरता या गौरव से प्रभावित होकर एक क्षणिक भाव, अस्थिर ज्वाला की तरह उछली है तब भी योग के कठिन मार्ग पर तेरे लिए कोई निश्चिन्ता नहीं हो सकती।

मर्त्य मानव के बाहरी उपकरणों में वह शक्ति नहीं है कि वे उसे इस आध्यात्मिक यात्रा और भीतर के दानवी युद्ध की घोर कठिनाइयों में से पार करा सकें या उसकी भयंकर हठीली अग्नि-परीक्षाओं का मुकाबला कर सकें या उसके सूक्ष्म और भयंकर संकटों का सामना करने और उन पर विजय पाने की शक्ति प्रदान कर सकें। केवल उसकी आत्मा की अपराजेय और अटल इच्छा और आत्मा के अदम्य उत्साह की कभी न बुझने वाली आग इस कठिन रूपान्तर के लिए और इस उच्च असम्भाव्य प्रयास के लिए काफ़ी है।

यह कल्पना न कर कि मार्ग सरल है। मार्ग लम्बा, दुःसाध्य, भयंकर और कठिन है। हर क्रदम पर घात, हर मोड़ पर खाई। हज़ारों दृश्य या अदृश्य शत्रु तेरे विरुद्ध उठ खड़े होंगे, वे तेरे अज्ञान के सामने भयंकर रूप से सूक्ष्म होंगे और तेरी कमज़ोरी के सामने भयंकर रूप से शक्तिशाली। और जब बड़े कष्ट के साथ तू उन्हें नष्ट कर लेगा तो उनकी जगह और हज़ारों उठ खड़े होंगे। नरक तेरा विरोध करने, तुझे घेर लेने, घायल करने और कष्ट देने के लिए झुण्ड-के-झुण्ड उगलता जायेगा। स्वर्ग निर्दय परीक्षाओं और शीत-उज्ज्वल विरोधों से तेरा मुकाबला करेगा। तू अपने-आपको अपनी मनोव्यथा में अकेला पायेगा, तेरे मार्ग में क्रुद्ध दानव खड़े होंगे, अनिच्छुक देवता तेरे ऊपर होंगे। रात्रि और अज्ञान के राज्य से लाभ उठाने वाली अंधेरी, भयंकर शक्तियाँ प्राचीन, बलवान्, क्रूर, निकट, असंख्य और अपराजित हैं। वे कोई परिवर्तन नहीं चाहती और वे विरोधी हैं। उज्ज्वल देव जो सहायता करने के लिए तैयार हैं या जिन्हें इसकी स्वीकृति है, अलग-थलग हैं, आने में धीमे हैं, दूर और संख्या में कम हैं और वे आते भी हैं तो कुछ क्षणों के लिए। हर अगला क्रदम एक युद्ध है। ढलवाँ उतराइयाँ हैं, अन्तहीन चढ़ाइयाँ हैं और जीतने के लिए ऊँची, और भी ऊँची चोटियाँ हैं। हर पठार जिस पर तू चढ़ लेता है मार्ग की एक चट्टी निकलता है और आगे की अन्तहीन चढ़ाइयाँ प्रकट करता है। हर विजय पर तू सोचता है कि यही अन्तिम विजयी संघर्ष है, वह आगे आने वाली

सैकड़ों भयंकर और संकटपूर्ण युद्धों की भूमिका निकलता है।... लेकिन तू कहता है कि भगवान् का हाथ मेरे साथ होगा और दिव्य जननी सहायता की कृपाभरी मुस्कान के साथ मेरे निकट होंगी, लेकिन क्या तू नहीं जानता कि भगवान् की कृपा को पाना या उसे रखना अमरों का अमृत पाने या कुबेर के अमूल्य खज़ाने पाने से ज़्यादा कठिन है। भगवान् के चुने हुए लोगों से पूछ, वे तुझे बतायेंगे कि किस प्रकार बहुधा शाश्वत ने उनसे अपना चेहरा छिपाया है, कितनी बार उसने अपने-आपको अपने रहस्यमय परदे के पीछे खींच लिया है और उन्होंने अपने-आपको नरक की पकड़ में, अँधेरे के सन्नास में अकेला, युद्ध के परिताप में नग्न और सुरक्षाहीन पाया है। और यदि परदे के पीछे उसकी उपस्थिति का अनुभव हो भी तो वह बादलों के पीछे छिपे जाड़े के सूर्य की भाँति होता है जो वर्षा या बरफ़ से, विपत्तिजनक तूफ़ान से, कठोर आँधी और कड़े जाड़े से, दुःखभरी धूमिलता के वातावरण में या धूसर, थकी हुई मन्दता से रक्षा नहीं करता। निश्चय ही सहायता हमेशा रहती है। उस समय भी जब यह लगता है कि उसने अपना हाथ खींच लिया है, लेकिन फिर भी सारी रात का आभास तो रहता ही है जिसमें कोई सूर्य न आयेगा, अँधेरे को भेदने के लिए आशा का कोई तारा न होगा। दिव्य जननी का चेहरा सुन्दर है। लेकिन वे भी कठोर और भयंकर हो सकती हैं। नहीं तो क्या अमरता एक खिलौना है जिसे यूँ ही किसी बालक के हाथ में दे दिया जाये या दिव्य जीवन एक पुरस्कार है जो बिना प्रयास के मिल जाये या वह कमज़ोर का ताज है? ठीक तरह से प्रयास करो और वह तुम्हें प्राप्त होगा, विश्वास न्यायसंगत ठहरेगा; लेकिन मार्ग का भयावह विधान भी है जिसे कोई रद्द नहीं कर सकता।

CWSA खण्ड १२, पृ. १५५-५६

एक बालक को पत्र

(ये पत्र आश्रम में प्रवेश पाने वाले पहले बालकों में से एक के नाम हैं। यह दस वर्ष की उम्र में आश्रम में आया था। युवावस्था से ही उसे संगीत, चित्रकला और काव्य में रस था। बाद में वह श्रीअरविन्द अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा-केन्द्र में संगीत का अध्यापक बन गया। उसने बारह वर्ष की उम्र में माताजी को पत्र लिखना शुरू किया था।)

मेरी प्यारी माँ,

पता नहीं, मैं अपनी सारी हँसी-खुशी और शान्ति क्यों खो बैठा हूँ। पता नहीं वह मेरे हृदय में कब लौट कर आयेगी। हे मेरी मधुर माँ, मैं क्या करूँ?

मेरे प्यारे बालक,

जब किसी का ध्यान हमेशा अपनी ओर लगा रहता है तो वह कभी सुखी नहीं रहता। जब कोई हर गुज़रते हुए आवेग को अपने ऊपर शासन करने देता है तो वह कभी शान्त नहीं रहता। काम और आत्म-संयम के द्वारा ही तुम सुख और शान्ति पा सकते हो।

२३ मार्च १९३५

मधुर माँ,

मैं सुखी होना चाहता हूँ। पर कैसे? काम के बीच खिन्नता आ धमकती है और मैं उसे भूल नहीं सकता। मेरी प्यारी माँ, हमेशा मेरे साथ रहो।

मेरे प्यारे बालक,

यह बिना कारण की खिन्नता काम करते समय भी आ सकती है परन्तु बिना काम के तो अवस्था और भी खराब होगी। काम में ही तुम सन्तुलन और आनन्द पा सकते हो। तुम्हारी सहायता करने और तुम्हें सहारा देने के लिए मैं हमेशा तुम्हारे साथ रहती हूँ। तुम्हारी माँ की ओर से प्रेम।

१२ जून १९३५

मेरी मधुर माँ,

मुझे बहुत थकान लगती है; मेरे अन्दर कोई भाग है जो प्रसन्न नहीं है, पता नहीं वह मेरे अन्दर है या मेरे बाहर; कोई चीज़ अपने-आपको बिल्कुल हारा हुआ और निष्प्राण अनुभव करती है। मेरी माँ, तुम तो सब कुछ जानती हो, क्या तुम मुझे

बतलाओगी कि यह क्या है?

यह तुम्हारे प्राण में कोई चीज़ है जो किसी प्रकार की ज़रा-सी परेशानी को भी नहीं सह सकती। प्राण के इस भाग को ज़्यादा मज़बूत और अधिक सहनशील होना सीखना पड़ेगा।

४ अगस्त १९३५

मेरी प्यारी माँ,

मैं बहुत थक गया हूँ। मेरे सिर में हलका-सा दर्द भी है।

मेरे प्यारे बालक,

मुझे तुम्हें यह बतलाने की ज़रूरत नहीं है कि यह सिर-दर्द कहाँ से आता है; मेरा खयाल है कि तुम जानते हो। केवल तभी जब तुम भौतिक जीवन में पूरी तरह नियमित हो पाओगे, तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा होगा।

तुम्हारी माँ की ओर से प्रेम।

६ सितम्बर १९३५

मेरी मधुर माँ,

तीन दिनों से मैं शाम के समय उदास रहता हूँ। आज सबरे भी मैं उदास था। मुझे ठीक पता नहीं कि यह क्यों होता है। दो दिन तो मैंने बहुत आनन्द का अनुभव किया, लेकिन अब आनन्द जा चुका है। ये सब चीज़ें कब समाप्त होंगी।

मेरे प्यारे बालक,

तुम्हें इन प्रत्यावर्तनों के बारे में चिन्ता नहीं करनी चाहिये। जब चैत्य सत्ता सतह पर आती है तो वह अपने साथ अपना आनन्द लेकर आती है; लेकिन जब मन और प्राण ऊपर आते हैं तो ऐसा लगता है कि आनन्द पीछे हट गया, यद्यपि वह हमेशा, पीछे मौजूद रहता है, फिर से अभिव्यक्त होने को तत्पर। लेकिन सबसे बढ़ कर, तुम्हें अक्षमता और असफलता के सुझावों पर विश्वास न करना चाहिये; वे एक विरोधी स्रोत से आते हैं और उन पर विश्वास न करना चाहिये। पथ पर कठिनाइयाँ अवश्य हैं, लेकिन अध्यवसाय के साथ विजय निश्चित है।

तुम्हारी माँ की ओर से प्यार।

१६ दिसम्बर १९३६

मधुर माँ,

तुमने मुझसे कहा है कि मैं प्रगति कर रहा हूँ। क्या तुम यह कह कर मुझे सान्त्वना

देना चाहती थीं? जब मैं अपने अन्दर देखता हूँ, आज नहीं, पिछले दो वर्षों से, तो मुझे कुछ नहीं मिलता। कभी-कभी मुझे लगता है, “ये सब प्रयास किसलिए? ये बेकार होंगे।” तुमने मुझसे कहा था कि अपने हृदय को खोलो और सब कुछ ठीक हो जायेगा; लेकिन तुम जानती हो माँ, मेरे अन्दर कोई चीज़ नहीं टिकती।

मेरे प्यारे बालक,

नहीं, तुम्हें दिलासा देने के लिए मैंने यह नहीं कहा था कि तुमने प्रगति की है। प्रगति के बारे में इन्कार नहीं किया जा सकता, भले वह प्रत्यक्ष न हो। निस्सन्देह योगमार्ग बहुत कठिन है और तुम्हें तीन-चार वर्षों में ही उसके फल पा लेने की आशा न करनी चाहिये। इसमें इससे बहुत ज़्यादा समय लगता है। लेकिन अभी तो तुम छोटे ही हो और तुम्हारे आगे सारा जीवन पड़ा है; तुम्हें अधीर होने की ज़रूरत नहीं है।

तुम कहते हो कि तुम प्रायः अवसाद से घिरे रहते हो। जब प्राणिक सत्ता की कामनाएँ पूरी नहीं की जाती तो वह अवसन्न हो जाती है।

सामान्य जीवन में आदमी को अपनी कामनाएँ पूरी करने के लिए संघर्ष करना पड़ता है; यहाँ तुम्हें ऐसा न करने के लिए संघर्ष करना पड़ता है। वास्तव में, तुम जिस किसी पथ का अनुसरण करो, सफलता उन्हीं को मिलती है जो बलवान्, साहसी और सहिष्णु हैं। और तुम जानते हो कि यहाँ हमारी शक्ति और हमारी सहायता तुम्हें हमेशा प्राप्त रहती हैं, तुम्हें केवल उनका उपयोग करना सीखना होगा।

तुम्हारी माँ की ओर से प्रेम।

२६ जुलाई १९३७

मेरी प्यारी माँ,

नहीं, मैं ये सब चीज़ें नहीं कर सकता। तुमने ऐसा सोचा ही क्यों? क्या कोई विशेष कारण है? क्या तुम मुझे एक बात बतलाओगी: अब तुम मुझसे इतनी दूर क्यों हो?

मेरे प्यारे बालक,

मैं बिलकुल नहीं जानती कि तुम्हारा मतलब किन सब चीज़ों से है। मैंने तुमसे जो कहा था वह बस इतना ही था कि अपनी कला की क्षमताओं को विकसित करने के लिए कहीं बाहर की अपेक्षा तुम यहाँ ज़्यादा अच्छी स्थिति में हो। मैंने यह भी कहा था कि अगर तुम शादी करना चाहते हो तो तुम्हें आश्रम छोड़ना पड़ेगा।

लेकिन तुम जानते हो कि मैं कभी किसी को शादी करने की सलाह नहीं देती, यह भयंकर बन्धन है।

मैंने कभी नहीं सोचा कि तुम सचमुच शादी करना चाहते हो, लेकिन यह अच्छा है कि कभी-कभी मैं तुम्हें याद दिलाती रहूँ कि तुम स्वतन्त्र हो और निश्चय तुम्हें ही करना है; बस इतना ही।

मुझे नहीं लगता कि तुम मुझसे दूर हो। मेरे लिए तो तुम हमेशा मेरी भुजाओं में ही रहते हो। अतः, अगर तुम्हें लगता है कि तुम मुझसे दूर हो तो यह ग़लत भाव है जो सत्य के साथ मेल नहीं खाता।

तुम्हारी माँ की ओर से प्यार।

२८ जुलाई १९३७

मेरी मधुर माँ,

तुमने मुझसे कहा था कि जब मैं बजा रहा था तो तुमने दो चीज़ें देखी थीं, “गरुड़” और महल तथा नदी। उनका मतलब क्या है?

महल और नदी तुम्हारे किसी पिछले जन्म के एक मुहूर्त के बिम्ब थे।

तुम्हारे पीछे पंख फैलाये हुए अचल खड़ा हुआ विशाल पक्षी “गरुड़” विष्णु का वाहन है। वह सर्प-नाशक है। ऐसा लगता था कि वह तुम्हारी रक्षा करने और तुम्हें प्रेरणा देने के लिए खड़ा था।

तुम्हारी माँ की ओर से प्यार।

२८ अगस्त १९३७

चन्द्रमा आध्यात्मिक ज्योति का प्रतीक है जो अपने मूल में एक तथा अभिव्यक्ति में अनेक है। चन्द्रमा केवल एक है, पर चन्द्रमा का हर एक बिम्ब भिन्न है। मैं यही बात काव्यमय रूप में कहना चाहती थी।

तुम्हारी माँ की ओर से प्यार।

९ सितम्बर १९३७

मैं कल जो कहना चाहती थी उसका मतलब यह है कि बहुत संवेदनशील मनुष्य अनेक प्रभावों के प्रति खुले रहते हैं और इसलिए उनके लिए स्थिर होना मुश्किल होता है।

लेकिन विवेक के साथ अच्छे और बुरे प्रभावों को अलग किया जा सकता है और बुरों को निरन्तर त्यागा जा सकता है।

तुम्हारी माँ की ओर से प्यार।

१३ सितम्बर १९३७

मेरे प्यारे बालक,

मैं तुम्हारी कठिनाई को भली-भाँति समझती हूँ। यह बहुत आम कठिनाई है और इसका समाधान बहुत सहनशील संकल्प और धैर्य से ही आ सकता है।

क्योंकि एक ओर तो तुम अपने-आपको भगवान् के प्रति उत्सर्ग करना और निर्मित होते हुए दिव्य जीवन में भाग लेना चाहते हो।

दूसरी ओर तुम सामान्य जीवन के सन्तोष और प्राण के सुख चाहते हो—यह सोचे बिना कि ये सुख बहुत संघर्ष और प्रयास द्वारा ही प्राप्त किये जा सकते हैं और ये हमेशा चिन्ता और दुःख के साथ गलबहियाँ किये रहते हैं।

पहले मार्ग पर तो व्यक्तिगत अक्षमता का कोई प्रश्न ही नहीं होता, क्योंकि हमारी सहायता और रक्षा हमेशा तुम्हारे साथ होती हैं। वस्तुतः, तुम्हें अपने-आपको इस सहायता और रक्षा की ओर खोलना और उस विरोधी को जीतने के लिए उनका उपयोग करना सीखना चाहिये जो तुम्हें निचली पशु-चेतना की ओर खींचने की कोशिश कर रहा है।

तुम्हारी माँ का प्यार, जो तुम्हें कभी नहीं छोड़ती।

१५ मई १९३८

मेरी मधुर माँ,

पिछले कुछ दिनों से मैं अनुभव कर रहा हूँ कि मैं क्रदम-क्रदम करके नीचे जा रहा हूँ। ऐसा लगता है कि हर चीज़ मुझे घेर रही है, मेरे हृदय को घेर रही है। मुझे अब भी लग रहा है कि मेरा दम घुट रहा है।

क्या तुम मुझे अपने बिना जीवन का अनुभव करा रही हो, यह देखने के लिए कि मैं इस जीवन को चाहता हूँ या नहीं? माँ, अगर तुम नहीं जानती कि मेरा पथ कौन-सा है, तो कौन जानता है?

मेरे प्यारे बालक,

मैं बहुत अच्छी तरह जानती हूँ कि तुम्हारे लिए सच्चा जीवन क्या है और तुम्हारी नियति क्या है। यह तो तुम्हें इसके बारे में अभिज्ञ होना चाहिये और इसे समझना चाहिये ताकि तुम इसे पा सको। तुम किस तरह से अपने-आपको नीचे जाते हुए अनुभव करते हो? क्या तुम्हारे अन्दर कामनाएँ ज़्यादा प्रबल हो रही हैं? जो कुछ भी हो, तुम हमेशा मेरी सहायता पर निर्भर रह सकते हो। उसे माँगते हुए संकोच न करो।

तुम्हारी माँ का प्यार।

२९ मई १९३८

मेरी मधुर माँ,

मुझे पूरी तरह से दम घुटता-सा लग रहा है। संघर्ष अधिक भयंकर हो उठा है।

मुझे इस तरह कितने दिनों तक चलते रहना पड़ेगा?

मेरे प्यारे बालक,

निराश न होओ और अधीर न बनो; इन चीजों के गायब होने में लम्बा समय लगता है। तुम जानते हो, नहीं जानते क्या कि हमारी शक्ति, हमारी सहायता और हमारे आशीर्वाद सदा तुम्हारे साथ हैं?

काम में रस बनाये रखो—यह भी कठिन घड़ियों में से गुज़रने में तुम्हारी सहायता करेगा। तुम्हारी माँ की ओर से प्रेम।

२८ जून १९३८

माँ,

आन्तरिक अवस्था अच्छी होने की जगह ख़राब, और अधिक ख़राब होती जा रही है। तुमने मुझसे धीरज धरने को कहा है, लेकिन वर्तमान अवस्था में मैं पत्थर-जैसा होता जा रहा हूँ जिसमें ऊर्जा नहीं है, जो जड़ और अधिकाधिक बन्द है। मैं तुम्हारे प्रकाश और तुम्हारी शक्ति को अपने चारों ओर अनुभव करता हूँ लेकिन मैं उन्हें ग्रहण नहीं कर पाता। मैं यह नहीं पूछ रहा कि मैं क्या करूँ—तुमने धीरज धरने के लिए कहा है और मैं धीरज धरूँगा। मैं तुम्हें केवल अपनी अवस्था बतला रहा हूँ, बस इतना ही।

तुम्हारा मुझे बतलाना ठीक है, मेरे प्यारे बालक; इससे तुम्हें अपने-आपको खोलने में सहायता मिलती है। मैं जानती हूँ कि अपने अन्दर इस प्रतिरोध को अनुभव करना कष्टकर है; लेकिन इसे जीतने के संकल्प में डटे रहो और वह अचानक टूट जायेगा।

तुम्हारी माँ की ओर से प्रेम।

१० जुलाई १९३८

मेरी मधुर माँ,

मैं तुमसे अपने कविता-लेखन के बारे में कुछ पूछना चाहता हूँ। आजकल वह बन्द है, क्या कोई आन्तरिक तैयारी चल रही है और क्या यह उच्चतर प्रेरणा के अवतरण की प्रतीक्षा में है?

मेरे प्यारे बालक,

हाँ, मुझे लगता है कि वस्तुतः तुम्हारी कविता इसलिए रुकी है कि तुम अपने-आपको उच्चतर प्रेरणा के लिए तैयार कर सको। तुम उन्हीं छन्दों में बार-बार गोल-गोल घूमते चले जा रहे थे। कोई नयी चीज़ आनी चाहिये थी।

हाँ, अगर तुम्हें ऐसा लगे कि कोई चीज़ अपने-आपको अभिव्यक्त करना चाहती है तो तुम्हें प्रयास करना चाहिये।

मैं हमेशा तुम्हारे साथ हूँ, मेरे प्यारे बालक, और मेरा प्रेम तुम्हें कभी नहीं छोड़ता।
तुम्हारी माँ।

१७ जुलाई १९३८

तुम्हें कविता लिखने के लिए मेरी पूरी स्वीकृति है और श्रीअरविन्द कहते हैं कि तुम्हारी कविता लिखने की क्षमता के बारे में कोई सन्देह नहीं है। आज की कविता बहुत अच्छी है। लेकिन जब तुम हर रोज़ लिखने की कोशिश करते हो तो वह अधिकाधिक मानसिक बन जाती है और तुम सच्ची प्रेरणा से सम्पर्क खो बैठते हो। इसलिए तुम्हें केवल तभी लिखना चाहिये जब तुम्हें लगे कि प्रेरणा आ रही है।

२० जुलाई १९३८

मेरी मधुर माँ,

क्या तुम मुझसे इसलिए नाराज़ हो कि मैंने आश्रम छोड़ने का निश्चय कर लिया है? मैं आगे बढ़ना चाहता हूँ—तुम्हारे विरुद्ध विद्रोह नहीं करना चाहता, नहीं, नहीं, हर्गिज़ नहीं। लेकिन मुझे अपने मार्ग के बारे में निश्चित होना है।

कृपया मुझे एक अवसर दो, माँ।

एक बात मैं और पूछना चाहता हूँ माँ, क्या तुम हमेशा मेरे हृदय में रहोगी?

मैं ज़रा भी नाराज़ नहीं हूँ, लेकिन चूँकि तुमने चले जाने का निश्चय कर लिया है इसलिए मैं तुम्हें रोक भी नहीं सकती और कोई ऐसी चीज़ नहीं कर सकती जो तुम्हें जाने की शक्ति से वञ्चित कर सके। मैं तुम्हारे हृदय में हूँ और हमेशा रहूँगी; इसलिए अगर तुम उसके अन्दर काफ़ी गहरे जाओ तो निश्चय ही मुझे वहाँ पाओगे।

तुम्हारी माँ का प्यार।

३० अगस्त १९३८

(अक्तूबर १९३८ में, अठारह वर्ष की अवस्था में साधक आठ वर्ष के लिए आश्रम छोड़ गया। निम्नलिखित पत्र उस समय के हैं जब वह आश्रम के बाहर था।)

मेरे प्यारे बालक,

मुझे २५ तारीख का तुम्हारा पत्र आज मिला। मुझे यह जान कर खुशी हुई कि आख़िर तुम स्वस्थ हो गये हो।

तुम अपने पत्र में कहते हो, “माँ, मैं संसार को नहीं चाहता, इसलिए नहीं कि मैं अपने

कर्तव्य से डरता हूँ, बल्कि इसलिए कि मैं आपको चाहता हूँ।” मैं इस बारे में तुम्हें कुछ बताना चाहती हूँ। इस बारे में निश्चित होने के लिए कि तुम आश्रम-जीवन के लिए हो, यह ज़रूरी है कि आध्यात्मिक जीवन और उससे सम्बद्ध अनुशासन—संक्षेप में कहें तो भगवान् की खोज और प्राप्ति—तुम्हारे लिए सबसे महत्वपूर्ण चीज़ होनी चाहिये, यही जीने-योग्य एकमात्र चीज़ होनी चाहिये।

मुझे चाहने का भाव तुम्हें बहका भी सकता है। क्या तुम्हें विश्वास है कि तुम मेरे अन्दर के भगवान् को चाहते हो? जब तुम यहाँ वापस आओगे और मुझसे न मिल सकोगे (क्योंकि श्रीअरविन्द की हड्डी टूटने के बाद से मैंने प्रणाम या मुलाकातें देना बन्द कर रखा है) तो क्या फिर से तुम्हें यह न लगेगा कि मैं सामान्य जीवन से मिलने वाली सभी सुख-सुविधाएँ छोड़ रहा हूँ लेकिन उसके बदले में कुछ अधिक नहीं पाता?

निस्सन्देह, अगर तुम किसी भी क्रीमत पर आध्यात्मिक जीवन जीना चाहते हो तो बात अलग है। लेकिन उस हालत में तुम्हें **आन्तरिक** सहायता पर निर्भर होना पड़ेगा, बाहरी या सतही सहायता पर नहीं।

मैं तुमसे यह सब इसलिए कह रही हूँ ताकि तुम यहाँ आकर फिर से एक बार निराश न हो जाओ।

मेरे पत्र को **बहुत सावधानी** से पढ़ो। इस पर फिर से एक बार विचार करो और निश्चित हो जाओ कि तुम उसे पूरी तरह समझ गये हो और जब तुम अपने अन्दर स्पष्ट रूप से देख सको तब फिर मुझे लिखना।

मेरा प्रेम और आशीर्वाद सदा तुम्हारे साथ हैं।

तुम्हारी माँ जो तुमसे प्यार करती है।

३० मार्च १९३९

मेरे प्यारे बालक,

मुझे तुम्हारा पत्र मिल गया है और मुझे तुम्हारे तीन वर्ष के लिए लखनऊ जाकर संगीत सीखने में कोई आपत्ति नहीं है, क्योंकि तुम यही तो चाहते हो।

फिर भी मुझे लगता है कि तुम्हारा फ़रवरी में पॉण्डिचेरी आना बुद्धिमत्तापूर्ण न होगा क्योंकि एक बार आने पर फिर से तुम पीड़ित और अनिश्चित हो सकते हो और इससे तुम्हारे अन्दर फिर से अनावश्यक संघर्ष उठ सकता है।

लखनऊ जाओ, तुम वहाँ जो कुछ सीख सकते हो सीखो और तब तुम समस्या पर विचार करने-योग्य बनोगे और अपने भविष्य के बारे में निश्चित फ़ैसला कर सकोगे।

मेरा प्रेम, मेरी सहायता और मेरे आशीर्वाद सदा तुम्हारे साथ हैं।

तुम्हारी माँ।

११ जनवरी १९४०

—‘श्रीमातृवाणी’, खण्ड १६, पृ. १५१-६१

अतिमानस को नीचे उतारना

मैं अपने बड़प्पन के लिए अतिमानस को नीचे उतारने की कोशिश नहीं कर रहा हूँ। मुझे मानव-अर्थों में बड़प्पन और नगण्यता की ज़रा भी परवाह नहीं। मैं पृथ्वी-चेतना में आन्तरिक 'सत्य', 'प्रकाश', 'सामञ्जस्य' और 'शान्ति' के तत्त्व को उतारने का प्रयत्न कर रहा हूँ। मैं उसे ऊपर देखता हूँ और जानता हूँ कि वह क्या है। मैं उसे हमेशा ऊपर से अपनी चेतना पर किरणें डालते हुए देखता हूँ और मैं कोशिश कर रहा हूँ कि वह सारी सत्ता को अपनी स्वाभाविक शक्ति के अन्दर उठा ले और मनुष्य की प्रकृति आधे अँधेरे, आधे उजाले में ही न पड़ी रहे। मेरा विश्वास है कि पृथ्वी पर विकास का अन्तिम उद्देश्य ही है यहाँ पर दिव्य चेतना के विस्तार का रास्ता खोल देने वाले इस सत्य को नीचे उतार लाना। अगर मुझसे बड़े लोगों के सामने यह दृष्टि न थी और यह आदर्श न था तो यह कोई कारण नहीं कि मुझे भी अपनी 'सत्य-भावना' और 'सत्य-दृष्टि' के अनुसार काम नहीं करना चाहिये। मुझे ज़रा भी परवाह नहीं है यदि मानव-बुद्धि मुझे इस बात के लिए मूर्ख ठहराये कि मैं एक ऐसा काम करने की कोशिश कर रहा हूँ जिसके लिए श्रीकृष्ण तक ने प्रयत्न नहीं किया। यह भगवान् की इच्छा है या नहीं या मैं उस सत्य को नीचे उतारने या उसके लिए मार्ग खोलने या कम-से-कम अवतरण को ज़्यादा सम्भव बनाने के लिए भेजा गया हूँ या नहीं, इसमें 'क', 'ख' या किसी और का तो सवाल ही नहीं है। यह तो मेरे और भगवान् के बीच की बात है। दुनिया मेरा मज़ाक चाहे तो उड़ाती रहे और मेरी इस धृष्टता से जहन्नुम टूटा पड़ता हो तो टूट पड़े, मैं विजय प्राप्त करके रहूँगा या मर-मिटूँगा। इसी भावना से मैं अतिमानस की खोज कर रहा हूँ, अपने लिए या दूसरों के लिए बड़प्पन की लालसा से नहीं।

१० फ़रवरी १९३५

CWSA खण्ड ३५, पृ. २८१-८२

मेरा आशय केवल अपने लिए अतिमानस को प्राप्त करने का बिलकुल नहीं है। मैं अपने लिए कुछ भी नहीं कर रहा; क्योंकि मुझे अपने लिए किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं है, न तो मोक्ष की और न अतिमानसिक स्थिति की। यदि मैं अतिमानसीकरण के लिए कोशिश कर रहा हूँ तो वह सिर्फ़ इसलिए कि पृथ्वी-चेतना के लिए इस काम का किया जाना आवश्यक है और अगर यह मेरे अन्दर सिद्ध न हुआ तो दूसरों में भी नहीं हो सकेगा। स्वयं मेरा अतिमानसिक स्थिति को प्राप्त करना पृथ्वी-चेतना के लिए अतिमानस के द्वार खोलने की कुञ्जीमात्र है। मेरा उसको केवल प्राप्त करने के उद्देश्य से ही प्राप्त करना बिलकुल बेकार होगा। परन्तु इससे यह परिणाम भी नहीं निकाल लेना चाहिये कि यदि या जब मैं अतिमानसिक हो जाऊँगा तो प्रत्येक मनुष्य ही अतिमानसिक हो जायेगा। दूसरे जो भी मनुष्य इसके लिए तैयार होंगे, और जब वे इसके लिए तैयार होंगे तब वे भी अतिमानसिक बन सकेंगे—यद्यपि इसमें सन्देह नहीं कि मेरी

उपलब्धि उनके लिए इसमें अत्यन्त सहायक होगी।

अतएव, इसके लिए अभीप्सा करना सर्वथा उचित है—यदि

१. मनुष्य इसे अतीव वैयक्तिक या अहंभावमय विषय बना कर अतिमानव बनने की नीतशे (Nietzsche) की-सी या और किसी महत्त्वाकांक्षा का रूप न दे दे।

२. वह इस उपलब्धि के लिए ज़रूरी और अनिवार्य अवस्थाओं और स्थितियों में से गुज़रने के लिए तैयार हो।

३. वह सच्चा हो और इसे भगवान् की खोज एवं उससे फलित होने वाली अपने अन्दर भागवत संकल्प की सिद्धि का अंग माने और इससे अधिक और किसी चीज़ का आग्रह न करे कि वह परम संकल्प चरितार्थ हो, उस चरितार्थता का रूप चाहे जो भी हो—अन्तरात्मीकरण, आध्यात्मीकरण या अतिमानसीकरण। इसे संसार में ईश्वर के कार्य की परिपूर्णता समझना चाहिये, वैयक्तिक सुयोग या उपलब्धि नहीं।

२० अप्रैल १९३५

CWSA खण्ड ३५, पृ. २८३-८४

निश्चित रूप से मैं आशा करता हूँ कि 'सत्य' की जयदायिनी शक्ति को मैं नीचे उतार ला सकूँगा और वह अन्त में उस 'मिथ्यात्व' का स्थान ले लेगी जो अभी तक मनुष्यों के मन और हृदय पर शासन करता है। कुछ व्यक्तियों की मुक्ति सदा ही सम्भव रही है और हमेशा होती रही है—परन्तु, मेरी दृष्टि में, सत्ता का यही एकमात्र उद्देश्य नहीं हो सकता। मनुष्यजाति ने चाहे जो भी संघर्ष और दुःख-ताप झेले हों और भूलों की हों, फिर भी उसमें एक प्रकाशोन्मुख प्रवृत्ति रही है, महत्तर सत्य के लिए ललक रही है, केवल आत्मा के लिए ही नहीं, बल्कि जीवन के लिए भी। यदि उसे अभी तक नहीं पाया गया है तो निश्चय ही यह इसलिए कि जो लोग 'प्रकाश' या महत्तर 'सत्य' तक पहुँचे वे वहाँ विश्राम करने में लग गये, उन्होंने उसे आत्मा के त्राण का एक साधन समझा बजाय जीवन के रूपान्तर का साधन समझने के। आत्मा की मुक्ति ज़रूरी है, उसके बिना कुछ नहीं किया जा सकता—परन्तु रूपान्तर भी सम्भव है।

२६ जनवरी १९३५

CWSA खण्ड ३५, पृ. २८९-९०

पर तुमने निश्चय ही यह समझने में भूल की है कि मैंने यह कहा था कि हम ग़रीबों का दुःख दूर करने के लिए आध्यात्मिक ढंग से कार्य कर रहे हैं। ऐसा मैंने कभी नहीं कहा। मेरा कार्य वर्तमान मानवता के ढाँचे के अन्दर सामाजिक विषयों में हस्तक्षेप करना नहीं, बल्कि एक उच्चतर आध्यात्मिक प्रकाश एवं एक श्रेष्ठतर शक्ति को नीचे उतार लाना है जो पृथ्वी-चेतना में आमूल परिवर्तन ले आये।

२२ दिसम्बर १९३६

CWSA खण्ड ३५, पृ. २९०-९१

—श्रीअरविन्द

सच्ची निष्कपटता

जो लोग सच्चे पथ का अनुसरण करना चाहते हैं वे स्वभावतः दुर्भावना की सभी शक्तियों के प्रहारों के प्रति खुल जाते हैं जो न केवल समझती नहीं हैं बल्कि साधारणतः जिसे नहीं समझती उससे घृणा करती हैं। लोग तुम्हारे बारे में जो द्वेषपूर्ण बेवकूफी-भरी बातें कहते हैं अगर तुम उनसे परेशान, उद्विग्न या हतोत्साह भी हो जाते हो तो तुम पथ पर बहुत आगे न बढ़ पाओगे। और ये चीज़ें तुम्हारे पास इसलिए नहीं आती कि तुम अभागे हो या तुम्हारे भाग्य में सुख नहीं बढ़ा, बल्कि इसके विपरीत, इसलिए आती हैं कि भागवत परम चेतना और परम कृपा तुम्हारे संकल्प को गम्भीरता से ले रही हैं और ऐसी परिस्थितियाँ बनाती हैं कि वे तुम्हारे रास्ते पर कसौटी बनें, यह देखने के लिए कि तुम्हारा संकल्प सच्चा है और तुम कठिनाई का सामना करने के लिए पर्याप्त रूप से बलवान् हो या नहीं। इसलिए, अगर कोई तुम्हारा मज़ाक उड़ाये या कोई कठोर बात कहे तो सबसे पहली चीज़ है अपने अन्दर देखो और यह देखो कि वह कौन-सी दुर्बलता या अपूर्णता है जिसने ऐसी चीज़ को होने दिया। तुम इसलिए निराश, कुपित या उदास न होओ कि जिसे तुम अपना उचित मूल्य समझते हो लोग उसकी प्रशंसा नहीं करते; इसके विपरीत, तुम्हें भागवत कृपा को धन्यवाद देना चाहिये कि उसने तुम्हारी उस दुर्बलता, अपूर्णता या विकार की ओर इशारा किया जिसे तुम्हें ठीक करना है।

इसलिए दुःखी होने की जगह तुम पूरी तरह से सन्तुष्ट हो सकते हो और लाभ उठा सकते हो, उस हानि से पूरा लाभ उठा सकते हो जो कोई तुम्हें पहुँचाना चाहता था।

इसके अतिरिक्त, अगर तुम सचमुच पथ का अनुसरण और योग करना चाहते हो, तुम्हें वह इसलिए नहीं करना चाहिये कि लोग तुम्हारी प्रशंसा करें या तुम्हारा सम्मान करें; तुम्हें वह इसलिए करना चाहिये कि यह तुम्हारी सत्ता की अनिवार्य आवश्यकता है, इसलिए कि तुम केवल इसी तरीके से सुखी हो सकते हो। लोग तुम्हारी प्रशंसा करते हैं या नहीं करते इसका तुम्हारे लिए बिलकुल कोई महत्त्व नहीं। तुम शुरू से ही अपने-आपसे कह सकते हो कि तुम सामान्य व्यक्ति से जितने अधिक दूर होगे, सामान्य व्यक्ति के तरीकों से जितने अधिक अपरिचित होगे, उतनी ही कम तुम्हारी प्रशंसा होगी—यह बहुत स्वाभाविक है, क्योंकि वे तुम्हें समझ नहीं पायेंगे। और मैं फिर से कहती हूँ कि इस चीज़ का किसी तरह का कोई महत्त्व नहीं है।

असली सच्चाई पथ का अनुसरण इसलिए करने में है क्योंकि तुम अन्यथा कर ही नहीं सकते, अपने-आपको भागवत जीवन के अर्पण करने में है क्योंकि तुम अन्यथा कर ही नहीं सकते, अपनी सत्ता को रूपान्तरित करने के प्रयास और प्रकाश में उठ आने में है क्योंकि तुम अन्यथा कर ही नहीं सकते, क्योंकि तुम्हारे जीने का यही एकमात्र कारण है।

जब ऐसा हो तो तुम निश्चित हो सकते हो कि तुम उचित पथ पर हो।

(१९६० के आरम्भ में)

—‘श्रीमातृवाणी’ खण्ड १५, पृ. ४१८-१९

कठिनाइयाँ तथा अन्धकार

मेरे खयाल से सभी आध्यात्मिक या आन्तरिक अनुभूतियों पर मात्र व्यक्तिनिष्ठ तथा आभासी या भ्रामक होने का दोषारोपण किया जा सकता है। लेकिन आध्यात्मिक जिज्ञासु के लिए छोटी-से-छोटी आन्तरिक अनुभूति भी बहुत मूल्यवान् होती है। मैं जिस 'सत्य' को धारण करता हूँ उस पर मैं डटा रहूँगा और चाहे इस जन्म में उस सत्य की बाह्य उपलब्धि का भले कोई अवसर प्राप्त न हो, फिर भी मैं उसे पकड़े रखूँगा। चाहे सभी मेरा साथ छोड़ दें, मुझे गलत ठहरायें और मेरे सत्य को जगत् के सामने भ्रम या पागलपन कह कर त्याग दें, मैं अपनी ही डगर पर चलूँगा। मैंने जिस कार्य का बीड़ा उठाया है उसकी कठिनाइयों को कभी अपने-आपसे छिपाया नहीं, न कठिनाइयाँ और न ही असफलता का खटका मुझे रास्ते से हटा सकते हैं।

७ अप्रैल १९३५

CWSA खण्ड ३५, पृ. ३७१

मुझे आशा है कि तुम जल्दी ही उस श्रद्धा तथा धीरज को प्राप्त कर लोगे जिसकी तुम अभीप्सा करते हो और यह भी कि हिचकिचाहट तथा आगा-पीछा करने की इस भावना को भी त्याग दोगे। मेरे लिए हमेशा ही योगपथ युद्ध के साथ-साथ एक यात्रा भी रहा है, उतार-चढ़ाव का पथ—जहाँ कभी प्रकाश तो उसके ठीक पीछे चला आता है अन्धकार और इसी के बाद फिर लौट आता है महानतर प्रकाश। लेकिन मुझसे ज़्यादा प्रसन्न भी और कोई नहीं होता जब शिष्य इन सब उतार-चढ़ावों को पार कर योग के निर्बाध और स्पष्ट मार्ग पर निकल आता है जिसके लिए उचित रूप से भौतिक मानव मन ललकता है।

२४ दिसम्बर १९३५

CWSA खण्ड ३५, पृ. ३७२

अवसाद और अन्धकार तथा निराशा के दौरों का आना साधना के मार्ग की एक परम्परा है—पूर्वीय या पश्चिमीय सभी योगों में उनका होना मानों एक नियम-सा हो गया है। मैं स्वयं इन सब चीज़ों के बारे में अच्छी तरह से जानता हूँ—लेकिन मेरी अनुभूति ने मुझे यह बोध प्रदान किया है कि इनका होना एक अनावश्यक परम्परा है और यदि कोई चाहे तो इनसे छुटकारा पा सकता है। यही कारण है कि जब कभी ये तुम्हारे अन्दर या दूसरों में आती हैं तो मैं उनके सामने श्रद्धा का सिद्धान्त खड़ा करने का प्रयास करता हूँ। यदि वे फिर भी आती हैं तो मनुष्य को यथासम्भव शीघ्रता के साथ उनमें से गुज़र जाना और सूर्यालोक में वापस आ जाना होता है।

९ अप्रैल १९३०

CWSA खण्ड ३५, पृ. ३७६

—श्रीअरविन्द

२६ नवम्बर १९५८ का वार्तालाप

आत्मा की क्या भूमिका है?

कहा जा सकता है कि यह परम प्रभु और अभिव्यक्त विश्व के बीच सचेतन मध्यस्थ है और साथ-ही-साथ परम प्रभु के साथ अभिव्यक्त विश्व का मिलन-स्थल।

आत्मा उच्चतम देवत्व को समझने और उसके साथ सम्पर्क स्थापित करने में सक्षम है और साथ-ही-साथ उच्चतम परम देव और बाह्यतम अभिव्यक्त विश्व का सबसे कम विकृत, सबसे अधिक पवित्र मध्यस्थ है। यह आत्मा ही है जो अन्तरात्मा की सहायता से चेतना को 'उच्चतम' की ओर, भगवान् की ओर मोड़ती है और आत्मा में ही चेतना भगवान् को समझना आरम्भ कर सकती है।

यह कहा जा सकता है कि जिसे "आत्मा" कहा जाता है वह है जड़-भौतिक जगत् में 'कृपा' द्वारा लाया गया वातावरण, ताकि यह अपने मूल की चेतना के प्रति जाग सके और उस तक लौटने की अभीप्सा कर सके। सचमुच यह एक तरह का वातावरण है जो मुक्त करता है, द्वार खोल देता है और चेतना को स्वतन्त्रता प्रदान करता है। यही है वह जो सत्य की उपलब्धि की तैयारी करता है और अभीप्सा को उसकी पूरी शक्ति और संसिद्धि प्रदान करता है।

और ऊपर से देखते हुए इसे यँ भी कहा जा सकता है : इस क्रिया, इस दीप्त और मुक्तिप्रद प्रभाव को ही "आत्मा" नाम दिया गया है, उस सबको जो हमारे लिए परम तथ्यों तक जाने के पथ खोल देता है, जो हमें 'अज्ञान' की दलदल में से, जहाँ हम फँसे हुए हैं, बाहर खींच लाता है, हमारे लिए द्वार खोल देता है, हमें राह दिखाता है, हमें कहाँ जाना चाहिये इसका निर्देशन करता है—मनुष्य ने इसी का नामकरण किया है "आत्मा"। यह भागवत कृपा द्वारा विश्व में बनाया गया वह वातावरण है जो उसे उस अन्धकार में से उबार सके जिसमें वह जा गिरा है। मानव प्राणी में अन्तरात्मा मानों इस 'कृपा' का व्यक्तिगत संकेन्द्रण, व्यक्तिगत प्रतिनिधित्व है। अन्तरात्मा मानवजाति की विशेष चीज़ है, केवल मनुष्य में ही इसका अस्तित्व है। यह मनुष्य में आत्मा की एक विशेष अभिव्यक्ति की तरह है। अन्य जगत्ओं की सत्ताओं में अन्तरात्मा नहीं होती, लेकिन वे आत्मा में वास कर सकती हैं। कहा जा सकता है कि अन्तरात्मा मानव में आत्मा का प्रतिनिधि है, उसे अधिक तेज़ी से ले चलने के लिए विशिष्ट सहायता है। अन्तरात्मा के द्वारा ही व्यक्तिगत उन्नति सम्भव होती है। अपने मूल रूप में आत्मा की क्रिया अधिक व्यापक, अधिक सामूहिक होती है।

फ़िलहाल आत्मा सहायक और पथ-प्रदर्शक की भूमिका निभाती है, पर यह जड़-जगत् की सर्वशक्तिमान् प्रभु नहीं है; जब नये जगत् में 'अतिमानस' संघटित हो जायेगा तब आत्मा प्रभु बन कर बिलकुल स्पष्ट और प्रत्यक्ष रूप से प्रकृति पर शासन करेगी।

जिसे “नव जन्म” कहा जाता है वह आध्यात्मिक जीवन में, आध्यात्मिक चेतना में जन्म है, वह अपने अन्दर आत्मा की किसी ऐसी चीज़ को वहन करना है जो अन्तरात्मा के द्वारा, व्यक्तिगत रूप से, जीवन को शासित करना और अस्तित्व की स्वामिनी बनना शुरू कर सकती है। लेकिन अतिमानसिक जगत् में आत्मा ही सचेतन रूप से, सहज-स्वाभाविक रूप से समग्र जगत् की और इसकी सब अभिव्यक्तियों और अभिव्यञ्जनाओं की स्वामिनी होगी।

व्यक्तिगत जीवन में इसी से सारा अन्तर पड़ जाता है; जब तक तुम आत्मा के बारे में बोलते-भर हो, इसके बारे में कुछ पढ़ा है, इसके अस्तित्व का धुँधला-सा परिचय है, यह चेतना के लिए कोई बहुत मूर्त वास्तविकता नहीं है, तो इसका मतलब है कि तुम आत्मा में नहीं जन्मे हो। और जब तुम आत्मा में जन्म ले लेते हो तो यह सारे स्थूल जगत् से अधिक मूर्त, कहीं अधिक जीवन्त, कहीं अधिक सत्य और कहीं अधिक प्रत्यक्ष हो जाती है। और इसी के कारण मनुष्यों में सारभूत भेद होता है। जब यह अनायास रूप से सत्य बन जाती है—सच्चा, ठोस अस्तित्व, ऐसा वातावरण जिसमें तुम स्वच्छन्दता से साँस ले सको—तब तुम जान जाते हो कि तुम उस पार चले गये हो। पर जब तक यह अस्पष्ट और धुँधली-सी रहती है—तुमने इसके बारे में कही गयी बातें सुनी-भर हैं, तुम जानते हो कि इसका अस्तित्व है लेकिन...। यह ठोस वास्तविकता नहीं बनी—तो इसका अर्थ है कि अभी तक तुम्हारा नवजन्म नहीं हुआ है। जब तक तुम अपने-आपसे यह कहते हो : “हाँ, इसे मैं देखता हूँ, इसे छूता हूँ, मैं जो पीड़ा भोगता हूँ, जो भूख मुझे सताती है, जो नींद मुझ पर हावी होती है, वही सत्य है, सचमुच यही ठोस है...।” (माताजी हँसती हैं) तो इसका अर्थ है कि तुम अभी तक उस पार नहीं गये हो, आत्मा में नहीं जन्मे हो।

(मौन)

असल में अधिकतर मनुष्य क़ैदी के समान हैं जिनके लिए सब दरवाज़े और खिड़कियाँ बन्द हैं, अतः उनका दम घुटता है, यह बिल्कुल स्वाभाविक है। लेकिन उनके पास वह कुञ्जी है जो दरवाज़ों और खिड़कियों को खोल सकती है, पर वे उसका उपयोग नहीं करते...। निश्चय ही, ऐसा भी समय होता है जब उन्हें यह मालूम नहीं होता कि उनके पास कुञ्जी है, परन्तु इसे जान लेने के बहुत बाद में भी, यह बताये जाने के बहुत बाद भी वे इसका उपयोग करने से झिझकते हैं और उन्हें सन्देह होता है कि इसमें दरवाज़े और खिड़कियाँ खोलने की क्षमता है भी। और क्या दरवाज़े और खिड़कियाँ खोलना अच्छा होगा! यह महसूस कर लेने पर भी कि “आखिर, शायद यह अच्छा ही हो”, थोड़ा डर बना रहता है : “जब ये दरवाज़े और खिड़कियाँ खुल जायेंगे तो क्या होगा?...” और वे डरे रहते हैं। उन्हें उस प्रकाश और स्वतन्त्रता में खो जाने का डर होता है। वे उसी में बने रहना चाहते हैं जिसे वे “अपना-आपा” कहते हैं। उन्हें अपना मिथ्यात्व और अपना बन्धन पसन्द है। उनमें कुछ चीज़ इसे पसन्द करती है और इससे चिपटी रहती है। वे इस खयाल में रहते हैं कि अपनी सीमाओं के बिना उनका

अस्तित्व ही नहीं रहेगा।

इसीलिए यात्रा इतनी लम्बी है, इसीलिए यह इतनी दुरूह है। क्योंकि यदि सचमुच कोई अपनी अस्तित्वहीनता के लिए सहमत हो तो सब कुछ कितना आसान, द्रुत, आलोकमय और आनन्दमय हो जायेगा—पर शायद उस तरह नहीं जैसे लोग हर्ष और आसानी को समझते हैं। तथ्य तो यह है कि ऐसे लोग बहुत कम हैं जिन्हें संघर्ष पसन्द नहीं है। बहुत कम लोग इस बात से सहमत होंगे कि रात का न होना सम्भव है, वे प्रकाश की कल्पना अन्धकार के उलटे रूप के सिवाय कर ही नहीं सकते: “छायाओं के बिना चित्र न होगा, संघर्ष के बिना विजय न होगी और कष्ट-सहन के बिना आनन्द न होगा।” बस, यही उनकी धारणा है, और जब तक कोई इस तरह सोचता है तब तक, आत्मा में उसका जन्म नहीं हुआ है।

—‘श्रीमातृवाणी’, खण्ड ९, पृ. ४६५-६८

मनुष्य दास है

मनुष्य अपनी सच्ची प्रकृति में एक ऐसी आत्मा है जो विश्व में वैयक्तिक और सामुदायिक अनुभूति और आत्माभिव्यक्ति के लिए मन, प्राण और शरीर का उपयोग करती है—हमारी वर्तमान समझ और आत्म-चेतना के लिए यह सत्य चाहे जितना अस्पष्ट क्यों न हो, योग के उद्देश्यों के लिए हमें उस पर विश्वास होना चाहिये, और फिर हम देखेंगे कि बढ़ते हुए अनुभव और महत्तर आत्मज्ञान के कारण हमारा विश्वास न्यायोचित ठहर रहा है। यह आत्मा एक अनन्त सत्ता है जो अपने-आपको दृश्य सत्ता में व्यक्तिगत अनुभव के लिए सीमित कर लेती है। यह एक अनन्त चेतना है जो अपने-आपको चेतना के निश्चित रूपों में नाना प्रकार के सुख, ज्ञान और शक्ति के लिए सीमित कर देती है। यह सत्ता का अनन्त आनन्द है जो अपने-आपको विस्तृत और संकुचित करता है और अपनी शक्तियों को छिपाता और प्रकट करता है, अस्तित्व के आनन्द के बहुतेरे रूप बनाता है, यहाँ तक कि प्रकट रूप से रूढ़िवाद और स्वयं अपने स्वभाव के निषेधात्मक रूप भी बनाता है। अपने-आपमें यह शाश्वत सच्चिदानन्द है, लेकिन यह जटिलता, यह पेचीदगी, सीमित के अन्दर असीम का सुलझना—वह पहलू है जिसे हम वैश्व और व्यक्तिगत दोनों रूपों में देखते हैं। शाश्वत सच्चिदानन्द को, अपनी सत्ता के इस तात्त्विक स्व को अपने अन्दर खोजना और उसमें निवास करना, यह स्थायी आधार है। उसके सच्चे स्वभाव को भागवत तरीके से जीने-योग्य सच्चा और कलात्मक बनाना, हमारे यन्त्रों—अतिमानस, मन, प्राण और शरीर को आध्यात्मिक पूर्णता का सक्रिय सिद्धान्त बनाना ही उसका स्थायी आधार है।

—श्रीअरविन्द

एक आध्यात्मीकृत समाज

... एक ऐसा समाज जो चाहे प्रारम्भिक रूप से आध्यात्मिक बन चुका हो मनुष्य के अन्दर स्थित दिव्य 'सत्ता' की अभिव्यक्ति और प्राप्ति को ही अपने समस्त क्रिया-कलाप का, अपनी शिक्षा, विद्या और अपने विज्ञान का, नैतिक शास्त्र, कला तथा अपने आर्थिक और राजनीतिक ढाँचे का सम्पूर्ण एवं प्रधान लक्ष्य बना देगा। जो कुछ प्राचीन वैदिक युग में किसी हद तक, अपूर्ण रूप में ही सही, उच्च जातियों की सांस्कृतिक शिक्षा के साथ हुआ था, वही तब समस्त शिक्षा के साथ होगा। वह समाज अपने क्षेत्र में समस्त ज्ञान को अपने अन्दर समेट लेगा, किन्तु उसकी समस्त प्रवृत्ति, उद्देश्य तथा व्यापक भावना केवल सांसारिक कुशलता की नहीं होगी, यद्यपि कुशलता को एकतरफ़ा नहीं कर दिया जायेगा, बल्कि आत्म-विकास और आत्म-उपलब्धि की होगी। वह समाज भौतिक और आन्तरात्मिक विज्ञान का अध्ययन इसलिए नहीं करेगा कि वह केवल संसार और प्रकृति को उनकी क्रियाओं में जान ले तथा भौतिक मानव-उद्देश्यों के लिए उनका प्रयोग करे, बल्कि इसलिए भी कि वे संसार में समस्त वस्तुओं के बीच में, उनके अन्दर, नीचे और ऊपर भी भगवान् को तथा 'आत्मा' के तरीकों को उसके आवरणों में तथा उनके पीछे से भी पहचान लें। नैतिक शास्त्र-सम्बन्धी उसका उद्देश्य कर्म का नियम स्थापित करना नहीं, बल्कि मनुष्य में दिव्य प्रकृति को विकसित करना होगा। यह नियम सामाजिक नियम के साथ योगदान भी दे सकता है और आंशिक रूप में उसमें सुधार भी ला सकता है। परन्तु यह सामाजिक नियम भी केवल द्विपाद प्राणियों, अर्थात् मानव-समूह का प्रायः ही एक अधूरा और अज्ञानपूर्ण नियम होता है। कलासम्बन्धी उसका उद्देश्य आन्तरिक और बाह्य जगत् की प्रतिमूर्तियों को ही उपस्थित करना नहीं होगा, बल्कि वह उन्हें एक ऐसी अर्थपूर्ण और निर्माणकारी अन्तर्दृष्टि से देखेगा जो उनके बाह्य रूपों के मूल तक जाती है, वह हमारे सामने उस 'सौन्दर्य' और 'सत्य' को प्रकट करेगा जिसके अन्य दृश्य और अदृश्य वस्तुएँ केवल रूप, आवरण अथवा प्रतीक और अर्थपूर्ण आकार हैं।

एक आध्यात्मीकृत समाज अपने समाजशास्त्र में व्यक्ति को, सन्त से लेकर अपराधी तक को, सामाजिक समस्या की कुछ ऐसी इकाइयों के रूप में नहीं लेगा जिन्हें किसी सुनिश्चित मशीनरी में से गुज़ार कर और ठोक-पीट कर सामाजिक साँचे में ढाल लेना है या जिन पर दबाव डाल कर इच्छानुसार गढ़ लेना है, वरन् वह उन्हें ऐसी आत्माएँ समझेगा जो एक जाल में फँसी दुःख उठा रही हैं और जिन्हें उसे मुक्त करना है, ऐसी आत्माएँ जो विकसित हो रही हैं और जिन्हें विकसित होने के लिए उत्साहित करना है अथवा ऐसी आत्माएँ जो विकसित हो चुकी हैं और जिनसे वे निम्न आत्माएँ, जो अभी परिपक्व अवस्था को नहीं पहुँची हैं, सहायता एवं शक्ति ग्रहण कर सकती हैं। उसके अर्थशास्त्र का उद्देश्य उत्पादन की एक विशाल मशीन का निर्माण करना नहीं होगा, फिर चाहे वह प्रतियोगीय ढंग की हो, चाहे सहकारी ढंग की, बल्कि

उसका उद्देश्य मनुष्यों को—कुछ को ही नहीं बल्कि सबको, प्रत्येक को, उसके उच्चतम सम्भव परिणाम के अनुसार—उनकी अपनी प्रकृति के अनुसार कार्य का आनन्द एवं आन्तरिक विकास के लिए स्वतन्त्र अवकाश प्रदान करना होगा, साथ ही उसका उद्देश्य सबके लिए एक सरल ढंग के समृद्ध और सुन्दर जीवन की व्यवस्था करना भी होगा। अपनी राजनीति में वह राष्ट्रों को, उनके अपने आन्तरिक जीवन के क्षेत्र में, व्यवस्थित और सुसज्जित विशाल 'राज्य-मशीनें' नहीं समझेगा, जब कि मनुष्य केवल मशीन की खातिर ही जीवन धारण कर रहा हो और उसे ही अपने भगवान् और अपनी विशालतर सत्ता के रूप में पूजता हो, अथवा पहली पुकार पर ही उसकी वेदी पर दूसरों का वध करने तथा साथ ही अपना भी रक्त बहाने में सन्तोष मानता हो जिससे कि मशीन दुरुस्त और शक्तिशाली बनी रहे तथा अधिकाधिक विशाल, जटिल, भारी और यान्त्रिक रूप से कुशल और पूर्ण बनती जाये। न ही ऐसा समाज इन राष्ट्रों या राज्यों को अपने पारस्परिक सम्बन्धों में ऐसे दुःखदायी इंजन ही बनाये रखने से सन्तुष्ट होगा जिनका काम शान्ति के समय एक-दूसरे पर विषैली गैस छोड़ना और संघर्ष के समय एक-दूसरे की सशस्त्र फ़ौजों तथा निहत्थे लोगों पर धावा बोलना हो तथा जिनमें से गोलियों की बौछार होती हो और जिनमें मनुष्यों को आधुनिक युद्धक्षेत्र में विपक्षियों के टैंकों की भाँति संहार करने का काम सौंपा गया हो। वह मनुष्यों को सामूहिक आत्माएँ, अर्थात् ऐसा दिव्य तत्त्व समझेगा जो छिपा हुआ है और जिसे अपनी मानव-समष्टियों में खोजना है, ऐसी सामूहिक आत्माएँ जिन्हें व्यक्ति के समान ही अपनी प्रकृति के अनुसार विकसित होना है तथा उस विकास के द्वारा उसे एक-दूसरे की, बल्कि मानवजाति के एक ही सहकार्य में समस्त जाति की सहायता करनी है। और यह कार्य होगा व्यक्ति और समुदाय में दिव्य सत्ता को प्राप्त करना तथा आध्यात्मिक, मानसिक, प्राणिक और भौतिक रूप में उसकी महानतम, विशालतम, समृद्धतम और गहनतम सम्भावनाओं को सबके आन्तरिक जीवन में तथा उनके बाह्य कार्य और प्रकृति में चरितार्थ करना।

१९ अगस्त १९५३ के वार्तालाप का कुछ अंश

मनुष्य हमेशा जो कुछ देते हैं उसके बदले में कुछ लेना क्यों चाहते हैं?

क्योंकि वे अपने-आपमें बन्द रहते हैं।

वे अपनी सीमाओं को अनुभव करते हैं और सोचते हैं कि वृद्धि पाने के लिए, बढ़ने के लिए, बचे रहने के लिए भी उन्हें बाहर से चीज़ें लेनी होंगी, क्योंकि वे अपनी व्यक्तिगत सीमाओं की चेतना में रहते हैं। इसलिए, उनकी दृष्टि में, जब वे कुछ देते हैं तो उनके अन्दर एक छेद हो जाता है, और यह छेद कुछ पाकर ही भरा जा सकता है!... स्वभावतः यह एक भूल है। सच तो यह है कि अपने छोटे व्यक्तित्व की संकुचित सीमाओं में बन्द रहने की जगह वे अपनी चेतना को इतना विस्तृत कर सकें कि औरों के साथ उनकी संकुचित सीमाओं में न केवल एक हो जायें बल्कि इन सीमाओं से बाहर निकल कर उनके पार जाकर सब जगह फैल जायें, एकमेव 'चेतना' के साथ मिल कर एक हो जायें और सब चीज़ें बन जायें, तब, उस क्षण, संकुचित सीमाएँ गायब हो जायेंगी, उससे पहले नहीं। और जब तक तुम्हें संकुचित सीमाओं का अनुभव होता है तब तक तुम लेना चाहते हो, क्योंकि तुम्हें खोने का डर रहता है। व्यक्ति खर्च करता है तो फिर से भरना चाहता है। मेरे बच्चो, यह इसी कारण है। क्योंकि अगर तुम सभी चीज़ों में फैले रहो, अगर आने और जाने वाले सभी स्पन्दन सब चीज़ों में मिल जाने की, अपने-आपको विस्तृत करने की, अपनी सीमाओं में बने रह कर बढ़ने की नहीं, उन सीमाओं से बाहर निकल कर बढ़ने की और हर चीज़ के साथ एक हो जाने की आवश्यकता व्यक्त करें तो तुम्हारे पास खोने के लिए कुछ भी न होगा, क्योंकि सब कुछ तुम्हारे पास होगा। लेकिन आदमी यह जानता नहीं। और चूँकि वह नहीं जानता इसलिए कर भी नहीं सकता। आदमी लेना चाहता है, सञ्चित, सञ्चित, सञ्चित करना चाहता है, लेकिन यह असम्भव है। तुम सञ्चित नहीं कर सकते। तुम्हें तादात्म्य साधना चाहिये। और तब जो कुछ थोड़ा-बहुत तुम देते हो उसका बदला चाहते हो। तुम एक सद्भावना देते हो तो उसकी मान्यता चाहते हो, तुम थोड़ा-सा स्नेह देते हो और दूसरों से उसकी आशा करते हो... क्योंकि तुम्हारे अन्दर यह क्षमता नहीं है कि हर एक के अन्दर सद्भावना बन सको, तुम्हारे अन्दर यह क्षमता नहीं है कि सबके अन्दर स्नेह बन सको, सब चीज़ों के अन्दर सौम्य प्रेम बन सको। तुम्हें बस ऐसा ही प्रतीत होता है, सब कुछ कटा-कटा और सीमित, और सब कुछ खोने का डर लगता है, तुम्हारे पास जो कुछ है उसे खोने का डर लगता है क्योंकि तब तुम कंगाल हो जाओगे। इसके विपरीत, यदि तुम तादात्म्य कर सको तो तुम्हें खींचने की ज़रूरत न रहेगी। तुम जितना अधिक फैलोगे उतना ही अधिक तुम्हारे पास होगा। तुम जितना अधिक तादात्म्य साधोगे उतने अधिक बन जाओगे। और तब लेने की जगह तुम दोगे। तुम जितना अधिक दोगे उतना ही अधिक बढ़ोगे।

लेकिन इसके लिए तुम्हें अपने छोटे-से अहंकार की सीमाओं में से निकल आना चाहिये। तुम्हें अपने अहं के साथ एक होने की जगह दिव्य 'शक्ति' के साथ तादात्म्य साधना चाहिये, दिव्य 'स्पन्दन' के साथ तादात्म्य साधना चाहिये।

यह बहुत कठिन है, लेकिन व्यक्ति इसमें सफल हो सकता है।

यह क्यों कहा जाता है कि अच्छी चीज़ें करने की अपेक्षा बुरी चीज़ें करना ज़्यादा आसान है?

यह कहा तो जाता है, पर हमेशा ठीक नहीं होता। यह लोगों पर निर्भर करता है। मेरा ऐसे लोगों से परिचय था (बहुत नहीं, फिर भी...) जिनके लिए कुछ भी बुरा करना असम्भव था। हानि पहुँचाने के विचार से ही उनके अन्दर हर चीज़ विद्रोह कर उठती थी; उनकी सहज गति इसके बिलकुल विरुद्ध थी। यह है तो विरल, फिर भी है ज़रूर।

यह इसलिए होता है क्योंकि अभी तक अपनी वर्तमान स्थिति में संसार अधिकतर विरोधी शक्तियों के प्रभाव में है, विशेषकर प्राणिक शक्ति के, जो क्रियाशील है और सामान्यतः वही तुमसे काम करवाती है। यह शक्ति अधिकतर विरोधी प्राण के प्रभाव में है, यानी, ऐसी शक्तियों के प्रभाव में जो हानि पहुँचाती, नष्ट करती और तोड़-फोड़ करती हैं। उस प्रकार की इच्छा जो चीज़ों को बिगाड़ना चाहती है : जब कोई सुन्दर चीज़ दिखायी दे तो उसकी सराहना करने, उससे प्यार करने, खुश होने और यह चाहने की जगह कि वह बढ़े और प्रगति करे (जो सच्ची भागवत क्रिया है), व्यक्ति को एक तरह का गुस्सा आता है, वह आपे से बाहर हो जाता है, वह तोड़ना-फोड़ना, नष्ट करना चाहता है। यह विरोधी शक्तियों की क्रिया है। दुर्भाग्यवश, यह बहुत-से लोगों में, यहाँ तक कि बच्चों में भी बहुत सहज है... यह नष्ट करने और बिगाड़ने की सहज वृत्ति। तो, यह विरोधी शक्तियों की रेलपेल है। और ये ऐसी शक्तियाँ हैं जो सीधी प्राण जगत् से आती हैं और धरती पर मानव चेतना में प्रकट होती हैं, और कभी-कभी पाशविक चेतना में भी। यह जो कुछ सुन्दर, शुद्ध, शुभ और सत्य है उसके प्रति घृणा है। यह भागवत 'उपस्थिति' के प्रति घृणा है। और स्वाभाविक है कि इस घृणा के साथ आती है नष्ट करने, तोड़-फोड़ करने, बिगाड़ने, खराब करने, विकृत करने और बदसूरत बनाने की इच्छा। एक पग और, तो यह कष्ट पहुँचाने की इच्छा हो जाती है। और यह सब विरोधी शक्तियों का प्रभाव है जो निश्चेतना, अवचेतना और अर्द्ध-चेतना में बिलकुल सहज रूप से काम करता है। केवल शुद्ध और आलोकमयी चेतना ही इसका विरोध कर सकती है और इसे इसकी करनी से रोक सकती है। लेकिन संसार की स्थिति ऐसी है कि यह सतत युद्ध चलता रहता है। बहुत थोड़े लोग ही इस पकड़ से बच सकते हैं। हर एक के अन्दर प्रायः एक छोटा-सा कोना होता है—कभी बहुत छोटा-सा, कभी बड़ा, कभी बिलकुल निश्चेतन, कभी थोड़ा-सा चेतन, कभी बड़ी शान से पूरी तरह सचेतन भाग—जो नष्ट करना पसन्द करता है, बिगाड़ना पसन्द करता है। और

जगत् की स्थिति ऐसी है कि जब तुम उसके आगे झुकते हो तो उसकी सहायता करने के लिए ऐसी शक्तियों की बाढ़ आ जाती है जो अवसर की ताक में रहती हैं, जो उस क्षण की प्रतीक्षा करती हैं जब वे प्रकट हो सकें, जिन्हें प्रकट होने के लिए मानव सहयोग की आवश्यकता होती है और वे उसकी तलाश में रहती हैं। जैसे ही अवसर मिलता है वे दौड़ पड़ती हैं, अत्यधिक मात्रा में ऊर्जा डालती हैं। इसलिए जब मनुष्य अशुभ कार्य करने लगता है तो अपने-आपको ज़्यादा शक्तिशाली अनुभव करता है। इसीलिए यह अधिक आसान है, जब कि यदि व्यक्ति इसके विरुद्ध क्रिया करना चाहे, इन शक्तियों का यन्त्र बनने से इन्कार कर दे तो उसे घोर संघर्ष करना पड़ता है, बहुत बलवान्, बहुत ऋजु, बहुत शुद्ध, बहुत निष्कपट होना पड़ता है और, सबसे बढ़ कर, अहंकारहीन होना पड़ता है। तुम्हें कभी पीठ न दिखानी चाहिये और कभी डरना न चाहिये। और यह आसान नहीं है। अर्थात्, जगत् ऐसी अवस्था में है कि विरोधी शक्तियों द्वारा —अन्धकार, विनाश, दुष्टता, घृणा की शक्तियों द्वारा—कभी हॉके न जाने के लिए तुम्हें वीर, सच्चा वीर होना चाहिये जो आघातों से नहीं डरता, किसी चीज़ से नहीं डरता, जो कभी पीठ नहीं दिखाता और कभी नहीं डरता, जिसमें आत्म-दया के जैसी घृणित चीज़ नहीं है। इसलिए... बुरा या अशुभ न करने के लिए, बुरा न सोचने, बुरा न चाहने के लिए, किसी भी अवस्था में यह सब न करने के लिए तुम्हें वीर होना चाहिये...। वीर होना हमेशा आसान नहीं होता। जिन दिनों व्यक्ति थका होता है, आराम चाहता है, कोई भी काम करना नहीं चाहता, वह फिसल जाता है, सब कुछ फिसल कर गिर जाता है। इसमें बहुत फिसलन है। यह बच्चों की बर्फ़-गाड़ी से भी ज़्यादा फिसलने वाली स्थिति होती है। आदमी फिसलता है, इस तरह नीचे, नीचे बगूले की तरह से और एकदम नीचे तली में पहुँचने के बाद ही उसे पता लगता है कि वह नीचे आ गया है। तब फिर से वापस चढ़ना पड़ता है और यह हमेशा आरामदेह नहीं होता।

लेकिन जिसे 'भागवत कृपा' में श्रद्धा हो, उसके लिए 'ज्योति' की ओर लौटना आसान हो जाता है।^१

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ५, पृ. २५६-५९

^१. यह अन्तिम वाक्य माताजी ने सितम्बर १९६९ में जोड़ा था जब यह वार्तालाप पहली बार छपा था।

श्रीअरविन्द के उत्तर (७३)

‘म’ कई बार मुझसे ‘र’ के बारे में पूछता है, लेकिन मेरा ‘र’ के साथ कोई सम्पर्क नहीं है। मैंने बस ‘ज’ से यही सुना था कि ‘र’ ‘अ’ के साथ घूमता-फिरता है। एक बार मैंने उन्हें साथ देखा था। ‘म’ ने मुझसे ‘र’ की एक नयी दोस्ती के बारे में भी पूछा। मैंने बूझने की कोशिश की और मैंने ‘न’ और ‘म’ की तरफ इशारा किया। फिर मैंने ‘व’ के नाम का सुझाव दिया, क्योंकि मैंने उसे ‘र’ के साथ कई महीनों के बाद पहली बार बातें करते सुना। वही होगी वह “नयी” व्यक्ति जिसके बारे में श्रीमाँ ने ‘म’ से कहा था।

मेरे खयाल से वही है—‘न’, जो ‘र’ की नयी दोस्त है। ‘र’ फिर से ‘अ’ के साथ घूम-फिर रहा है और उसी हिसाब से तप भी रहा है—उसका कहना है कि उसे अनुभव होता है जैसे ‘अ’ उसकी प्राणिक ऊर्जा खींच रही हो—लेकिन फिर भी वह उसके साथ घूमना-फिरना नहीं छोड़ सकता।

‘ज’ अपने हाल के प्राणिक विक्षोभ का जिम्मेदार ‘व’ को ठहरा रहा है—जब उसे एक दिन अपने कार्यकर्ता के साथ उसके कमरे में जाना पड़ा था। लेकिन मेरे खयाल से वह बढ़ा-चढ़ा कर कहता है। उसने ‘व’ से बातचीत भी नहीं की, और ‘व’ तो उसके साथ न के बराबर बोलती है। तो फिर वह या उसका वातावरण ‘ज’ को विक्षुब्ध कैसे कर सकता है भला? हाँ, अगर ‘ज’ ने उसमें सचेतन रूप से रस लिया हो या वह अपनी स्वैर कल्पनाओं में बह गया हो तो बात अलग है। या हो सकता है कि उसके जाने बिना यह चीज़ उसके अन्दर छन कर प्रवेश कर गयी हो!

किसी दूसरे के वातावरण से विक्षुब्ध हो जाना सम्भव हो सकता है, लेकिन सामान्यतया यह तभी होता है जब दूसरे का वातावरण स्वयं व्यक्ति के वातावरण से उलटा हो या फिर उसमें ऐसी प्राणिक या मानसिक प्रतिक्रियाएँ हों जिनके प्रति व्यक्ति झुका हुआ हो (उदाहरण के लिए, सेक्स, उत्तेजना, शंका इत्यादि की प्रतिक्रियाएँ)।

७ फ़रवरी १९३५

कल मुझे ‘ज’ की बात का खण्डन करना पड़ा जब उसने कहा कि ‘अ’ की दूसरों पर हुकुम चलाने की आदत है और इसका उसके भ्रूमध्य के बीच, त्वचा के ऊपर

के अज्ञचक्र से कुछ सम्बन्ध है। ज़िद्दीपन तो प्रायः सभी बच्चों में होता है, लेकिन उसके अन्दर इन चक्रों के बारे में बड़े अजीब-अजीब से विचार हैं, और प्रायः वह अपने विचारों को ऐसी दृढ़ता के साथ सामने रखता है कि सामने वाले को ऐसा लगता है कि वह महान् दर्प से भरा है।

व्यक्ति योग के सन्दर्भ में ही चक्रों के बारे में बोल सकता है। सामान्य लोगों में चक्र खुले नहीं होते। केवल तभी जब वे साधना करते हैं कि चक्र खुलते हैं। क्योंकि चक्र आन्तरिक चेतना के केन्द्र हैं और मूलतः उनका स्थान सूक्ष्म शरीर में होता है। सामान्य मनुष्यों में वे बहुत ही कम सक्रिय होते हैं—क्योंकि उनके अन्दर तो बाहरी चेतना ही क्रियाशील होती है।

आधार दास की किताब में मैंने 'अ' का लेख पढ़ा। मैंने किताब के कुछ हिस्से पढ़े और मुझे वे महेन्द्रनाथ सरकार के भाषणों के जितने पसन्द नहीं आये। निश्चित रूप से उसकी समझ सरकार की समझ से अवर है। किन्हीं-किन्हीं स्थानों में वह टटोलता-सा लगता है, तो कहीं वह अपने कथन के बारे में कुछ ज़्यादा ही विश्वसनीय प्रतीत होता है, और बहुधा स्पष्ट चिन्तन का उसमें अभाव ही दीखता है।

आधार दास के अन्दर आध्यात्मिक अनुभूति के प्रति कोई झुकाव नहीं है, जैसा कि सरकार में है—वह केवल विचारों को देखता है।

इससे भी ज़्यादा अजीब तो प्रबुद्ध भ्राता का एक वक्तव्य है जिसमें लेखक चालाकी से भरा संकेत करता है "जैसा कि श्रीअरविन्द ने इसे समझा है।" वह सोचता है कि शंकर के दर्शन को बहुत ग़लत समझा गया है क्योंकि उसमें से उनके ब्रह्मवाद तथा भक्तिवाद को निकाल बाहर कर दिया गया है। लेकिन क्या विवेकानन्द तथा रामकृष्ण भी शंकर के दर्शन से पूरी तरह सहमत थे?

वे लोग यह दिखाना चाहते हैं कि शंकर इतने कठोर रूप से मायावादी नहीं थे जैसा कि उनको चित्रित किया जाता है—कि उन्होंने संसार को एक तरह की अस्थायी वास्तविकता प्रदान की थी, कि उन्होंने भक्ति इत्यादि को स्वीकार किया था। लेकिन ये ऐसी बातें हैं (मान लो कि यह उनका कथन हो) जो उनके अपने दर्शन के तर्क से मेल नहीं खातीं, क्योंकि उनका दर्शन तो यही है कि केवल ब्रह्म का अस्तित्व है, बाकी सब अज्ञान और भ्रम है—*ब्रह्म सत्यं जगन् मिथ्या*। वे आगे कहते हैं कि ब्रह्म को कर्म द्वारा नहीं पाया जा सकता। अगर यह उनका दर्शन नहीं था तो मैं जानना चाहूँगा कि आखिर उनका दर्शन था क्या। बहरहाल, उनके दर्शन को लोगों ने इसी तरह समझा है। अब जब कि सर्वसामान्य का झुकाव कठोर मायावाद से हट

रहा है, ऐसा लगता है कि बहुत सारे अद्वैतिन् इससे बिदक रहे हैं और अपने साथ शंकर को भी लिये चल रहे हैं।

विवेकानन्द ने शंकर के दर्शन को कुछ परिवर्तन के साथ स्वीकारा है, उनमें से प्रमुख है—दरिद्र-नारायण की सेवा, जो बौद्ध करुणा तथा आधुनिक परोपकार का मिश्रण है।

८ फ़रवरी १९३५

कल 'ज' यहाँ से चले जाने की गहरी सोच में डूबा हुआ था। आज उसके पिता की एक चिट्ठी आयी जिसमें उन्होंने उसके किसी रिश्तेदार से उस लड़की के विवाह की बात लिखी थी जिसके साथ कभी 'ज' की सगाई होने वाली थी। 'ज' का कहना है कि यहाँ से चले जाने की उसके अन्दर की यह प्रबल कामना विशेष रूप से उस पर डाले गये या वातावरण में छितरे हुए ज़बरदस्त दबाव से उठ रही है—मुझे तो लगता है कि यह उसके रिश्तेदारों से आया हुआ खिंचाव है। दबाव सभी के ऊपर है और मैं भी सारे-सारे दिन उनींदा-सा महसूस करता हूँ।

दबाव से उसका मतलब है? वातावरण में 'शक्ति' का दबाव? 'शक्ति' का दबाव कभी भी उसके अन्दर यहाँ से चले जाने की इच्छा पैदा नहीं करेगा। योग के विपरीत ही कोई शक्ति या आकर्षण ऐसा परिणाम लाने की कोशिश करेगा।

९ फ़रवरी १९३५

'ल' ने मुझसे कहा कि वह आश्रम में केवल कुछ लोगों को जानती है—वह 'ग' को भी नहीं पहचानती। कितना सुविधाजनक और आवश्यक अज्ञान! यह तो हनुमान के जैसा है जो केवल राम का नाम जानता है या लक्ष्मण की भाँति है जिन्होंने केवल सीता की पायल देखी थी। वह कितने ही अनावश्यक तत्त्वों को अपने दिमाग से बाहर ही रखती है जब कि मेरे या 'ज' या 'प' के जैसों के दिमाग लोगों के बारे में विचार करने और अपनी राय बनाने के व्यर्थ के चक्करों में घूमते और भटकते ही रहते हैं!

अपने सम्बन्धों को सीमित रख पाना निश्चय ही बहुत बड़ी सहायता है, बशर्ते कि इस चीज़ को बहुत दूर तक न खींचा जाये। लेकिन मैं यह भी जोड़ दूँ कि बहरहाल, सीमित सम्बन्ध रखते हुए भी अवाञ्छनीय लहरें प्रवेश पा सकती हैं—यह सावधानी बरतने का चिह्न है, लेकिन यह तुम्हें पूरी तरह से सुरक्षित नहीं रखता। दूसरी ओर, सबके साथ एकदम से सम्बन्ध काट लेना व्यक्ति को दूसरे छोर पर पहुँचा देता है और जिसके अपने खतरे हैं। आन्तरिक चेतना में विकसित होने पर ही उस "तत्त्व", यानी, अन्यमनस्कता, विक्षोभ, बहिर्मुखता इत्यादि चीज़ों से

तुम्हें पूरी तरह छुटकारा मिल सकता है। बीच-बीच में, अगर समझदारी के साथ किया जाये तो आत्मसात्करण करने और इस तरह सम्बन्धों को सीमित कर लेने से सहायता अवश्य मिलती है।

कभी-कभी 'ज' ऐसी-ऐसी बातें करता है मानों स्पष्ट रूप से उसे अनुभव हुए हैं और वह जो-जो कह रहा है उस सब पर उसने अधिकार पा लिया हो। मुझे पता नहीं कि क्या वह अपने अन्तर्दर्शनों और सपनों को केवल मानसिक रूप दे देता है या फिर उसमें कोई ठोस चीज़ भी होती है।

१. वह कहता है कि प्राण-जगत् की शक्तियों और ऊर्जाओं को जानने के लिए व्यक्ति को मन से ऊपर उठ कर उन पर विचार करना चाहिये। वह ऐसे बातें करता है मानों उसने यह सब किया है और वह मन से ऊपर उठ गया है। वह कहाँ तक सही है?

कभी-कभी व्यक्ति को मन से ऊपर उठने का अनुभव होता है। मेरे खयाल से उसे ऐसा ही अनुभव हुआ होगा, लेकिन यह मन का ऊपर, उच्चतर मानसिक स्तर पर जाना है (जब वह क्रिया मात्र शरीर के बाहर जाना न हो)। मन के ऊपर होने के लिए व्यक्ति को सबसे पहले मन से ऊपर के स्व को उपलब्ध करना और वहाँ निवास करना होगा।

२. फिर वह कहता है कि उसे अधिमन तक के अनुभव हुए हैं, और मन तथा अधिमन के बीच गुह्यविद्या के क्षेत्र हैं। मैं समझ ही नहीं पा रहा हूँ कि ऐसा कैसे हो सकता है? गुह्यविद्या शब्द को सामान्यतया जैसे समझा जाता है उसका अर्थ होता है, प्राणिक स्तर से सम्बद्ध कोई प्रक्रिया। अगर मन से ऊपर कोई चीज़ है तो उसे गुह्यविद्या के तहत नहीं रखा जा सकेगा, क्योंकि वह बहुत अधिक आध्यात्मिक होगी। मेरे खयाल से वह अचेतन रूप से चीज़ों को बहुत बढ़ा-चढ़ा रहा है या उसके अन्दर एक असामान्य दर्प घर कर गया है। अन्यथा, वह मन और अतिमन के समीप के क्षेत्रों के बारे में कैसे बोल सकता है जब कि उसने अपने मन के अन्दर किसी तरह की शान्ति भी स्थापित नहीं की है?

व्यक्ति ऊपर से प्रभावों को पा सकता है, लेकिन जब तक व्यक्ति का मन उच्चतम अचञ्चलता, शान्ति, निश्चल-नीरवता से भरा नहीं होता वह प्रत्यक्ष सम्पर्क में नहीं आ सकता। ये प्रभाव मन्द पड़ जाते, मानसिक और प्राणिक बन जाते हैं और अपनी सहज प्रकृति में उच्चतर स्तरों की शक्तियाँ नहीं रहते। न ही यह चीज़ चेतना के सभी स्तरों की छिपी हुई शक्तियों पर नियन्त्रण पाने के लिए काफ़ी है, गुह्यविद्या से सम्भवतः उसका यही अर्थ है।

१० फ़रवरी १९३५

अपने घर के लोगों के बारे में मुझे कई सपने आये। एक सपना कुछ अजीब-सा था। मैं अपने दोस्तों के साथ बैठा था। मैं यहाँ से छुट्टियों में गया था। उन्होंने मुझे एक लड़के के बारे में बतलाया जो गभीर ध्यान में चला गया और वह अपने हजार साल पुराने जन्मों के बारे में बतला रहा था जब वह पशु था। मुझे आश्चर्य होता है कि इन चीजों को जानने के लिए वह ध्यान में कितने गहरे गया होगा! इस कहानी को सुनते हुए वातावरण ऐसा हो गया जैसा भूत-प्रेत की बातें करते हुए हो जाता है।

सपने की “घटना” सम्भवतः आध्यात्मिक स्वभाव की रही हो—लड़के का ध्यान आध्यात्मिक प्रभाव-तले हो, यानी, निम्नतर प्राण या सूक्ष्म प्राणिक भौतिक स्तरों की तुलना में—इसीलिए उसमें भूत-प्रेत का साम्य हो।

आज मैंने यह भूल कर दी कि मैं ‘व’ से पूछ बैठा कि ‘र’ को क्या मैं श्रीमाँ की फ्रेंच-कहानियों की उसकी प्रति दे सकता हूँ—फ़िलहाल उसकी प्रति मेरे पास है। फिर उसने अन्य कहानियों की एक शृंखला के बारे में बतलाया जो वह मुझे पढ़ने के लिए देना चाहती थी, और मैंने तुरन्त सहर्ष ही उसका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। निस्सन्देह, उसके साथ बातें करते हुए जितना सम्भव हो सका मैंने उसके और अपने बीच एक दीवार-सी खड़ी कर ली थी। २४ नवम्बर के बाद मैंने पहली बार उसके साथ बातचीत की। अब मेरी समझ में नहीं आ रहा कि अगर वह मुझसे मिले तो मेरा उससे कतरा कर निकल पाना कैसे सम्भव होगा? बस एक ही चीज़ जो मैं कर सकता हूँ वह यह कि मुँहफट होकर उससे सीधा कह दूँ कि हमें कम-से-कम सम्बन्ध और सम्पर्क रखना है ताकि हम दोनों विक्षुब्ध न हों। वह पहले से ज़्यादा बहिर्मुख हो गयी है और अगर उसने ठान ली तो वह फिर से मुझे छेड़ना शुरू कर देगी।

उसके साथ घनिष्ठता न रखना ही बुद्धिमानी होगी। इस हालत में उससे कतराने की शायद ज़रूरत ही न रहे।...

एक सपने में पहले मैंने बिल्ली के आकार के एक जानवर को देखा—उसका चेहरा भालू-जैसा था। उसने एक गिलहरी को पकड़ लिया, लेकिन उसे न के बराबर खाया। एक चिड़िया पास उतर आयी, गिलहरी चली गयी, और वह जानवर ज़्यादा भालू के जैसा दीखने लगा जिसके कुछ भागों में सुस्ती भरी थी। उसने चिड़िया को धर पकड़ा, लेकिन खाया नहीं। जानवर काले रंग का था और मैं उसके नाखून

देख सकता था जो कुत्ते के जैसे लग रहे थे। मैं उसे बस उत्सुकता के साथ देखता चला गया। क्या यह किसी प्रभाव का सूचक था?

‘व’ के साथ कुछ क्षणों का सम्पर्क इतना सरल नहीं रहा। सवेरे, मैं उसके प्रति खिंचाव का अनुभव करने लगा और मैंने उससे बातचीत करने की सोची। दोपहर को, खिंचाव बहुत ज्यादा बढ़ गया जिसका मैं निरीक्षण करता रहा, हालाँकि मैं कुछ चिड़चिड़ा भी हो गया था।

निश्चित तौर पर ‘व’ का सम्पर्क अब तक तुम्हारे लिए कमज़ोरी है—इसलिए उससे बचना ही अच्छा है।

जानवर प्राणिक गति या प्राणिक प्रभाव होगा (सामान्यतः बिल्ली का अर्थ वही होता है) जो क्रिया के साथ बढ़ता रहता है। उसका अपने शिकार को बहुत न खाना इस बात का सूचक हो सकता है कि वह अधिक काल्पनिक या प्राणिक कामना होगी, वैसी नहीं जो अपने-आपको क्रिया में झोंक देती है या फिर वह भोग की क्रिया का आरम्भ करती है, लेकिन उसे पूरा नहीं करती। पक्षी और गिलहरी का अर्थ मैं नहीं पकड़ पा रहा—कुछ तो होगा ही, लेकिन ये प्राणिक अर्थ समझने में बड़े कठिन होते हैं।

१२ फ़रवरी १९३५

थोड़े समय के बाद कामुक-आकर्षण गायब हो गया, और पाँच बजे मैं अपने सिर के शिखर पर आसीन था, शान्ति से भरपूर था। यह अवस्था रात तक रही। रात में अजीब और शरीर लोगों के साथ अलग-अलग सड़कों पर भटकने के कई सपने आये, और उनमें दो-एक सपने काम-वासना के भी थे। मुझे आश्चर्य होता है कि नींद में निम्न प्राणिक जगत् में भटकने के सिवाय और कोई जगह क्यों नहीं है भला? प्रायः महीने-भर में मैं एक भी डंग का सपना नहीं देखता, ऐसा सपना जो कम-से-कम मानसिक स्तर का तो हो।

ज्यादातर लोग नींद में अधिक समय प्राण में ही घूमते-फिरते हैं क्योंकि वह भौतिक के सबसे पास है और वहाँ रहना सबसे आसान है। व्यक्ति उच्चतर स्तरों में जाता ज़रूर है, लेकिन वहाँ या तो बहुत कम समय के लिए जाता है या फिर उसे उसकी याद ही नहीं रहती। फिर, जागते समय व्यक्ति दोबारा निम्न प्राण और सूक्ष्म भौतिक से गुज़रता है, और चूँकि वहाँ के सपने सबसे अन्तिम होते हैं, उन्हें याद रखना अधिक आसान होता है। दूसरे सपने केवल तभी याद रहते हैं अगर (१) वे स्मरण रखने वाली चेतना को प्रबल रूप से प्रभावित करें, (२) व्यक्ति ऐसे सपनों के बाद एकदम से जाग जाये, (३) व्यक्ति नींद में सचेतन बनना सीख ले। उदाहरण के लिए, एक स्तर से दूसरे स्तर तक उस पथ का सचेतन रूप से अनुसरण करे। कुछ लोग

जागते ही, एकदम से हिले-डुले बिना, अपने सपनों के सिरे को पकड़ कर पीछे जाने की कोशिश करके उन्हें याद रखने का प्रयास करते हैं।...

दिन के वक़्त मेरे अन्दर दो-एक दफ़ा हलकी कामुक-कल्पनाएँ जगीं, जो जल्दी ही गायब भी हो गयीं। शाम को उनका कोई निशान न था। अब, सोने जाने के ठीक पहले, शरीर में अचानक कामुक-प्रवृत्ति उभर आयी। पहले कामुक-कल्पना के लिए यह किसी वस्तु को पाने की कोशिश कर रही थी। पहले 'व' का खयाल आया—मैंने उसे झाड़ फेंका। उसके बाद 'स' का आया, और चूँकि वह कल्पना मुझ पर धावा बोल रही थी, मैंने अपने मन को उससे हटा लेने की कोशिश की। ऐसा लगता है मानों कोई कामुक-सत्ता मेरे बहुत करीब है और वही मुझे नीचे ले जाना या मेरे द्वारा भोग करना चाहती है।

मेरे खयाल से तुम जो देख रहे हो वह सही है। इसी तरह ये सत्ताएँ आती हैं और व्यक्ति की कल्पना को इसकी या उसकी ओर मोड़ने की कोशिश करती हैं ताकि उन्हें अपने उपभोग के लिए एक भौतिक आधार मिल जाये।

१३ फ़रवरी १९३५

कर्म के बारे में 'न' और 'द' को लिखी आपकी कुछ चिट्ठियों को पढ़ कर 'त्र' नाराज़ हो गया। उसे आश्चर्य होता है कि ऐसे लोग आश्रम में रहते कैसे हैं भला जो इस तरह के सवाल पूछा करते हैं, हमेशा सन्देह पालते रहते हैं और आपके दर्शन में त्रुटियाँ खोजते रहते हैं, जब कि पुराकाल के या आजकल के भी कई शिष्य गुरु के पास 'परिप्रश्नेन सेवया', यानी विनम्रता की मूर्ति बन कर जाते हैं। लेकिन उसे कुछ दूसरे तत्त्वों को भी ध्यान में रखना होगा—पाश्चात्य मानसिकता, अहंकार को त्यागने की कठिनाई, प्राणिक माँगों—ये सभी चीज़ें ऐसे शिष्यों को गढ़ने में साथ-साथ चलती हैं। इसके अतिरिक्त, आज के ज़माने को देखते हुए यह एकदम स्वाभाविक है। शायद, एक बार इन प्रमुख गाँठों के टूटने के बाद, वे पूर्विय शिष्यों से भी कहीं ज़्यादा अच्छे बन जायेंगे, वे भी पूरी तरह से 'परिप्रश्नेन सेवया' के द्वारा नम्रता की मूर्ति बन जायेंगे।

अन्तिम बात के बारे में मुझे पूरा विश्वास नहीं है। आख़िर, आध्यात्मिक क्षेत्र में भारत ने अपनी मानसिकता और प्रक्रिया के द्वारा यूरोप के बौद्धिक सन्देहों तथा प्रश्नों की बनिस्बत सौगुना अधिक कार्य किया है। यहाँ तक कि जब कोई यूरोपीय अपने सन्देहों और प्रश्नों पर विजय पा भी लेता है फिर भी वह समान क्षमतावाले किसी भारतीय के जितनी तेज़ी से और उसके

जितनी गति से मार्ग पर आगे नहीं बढ़ सकता क्योंकि उसके मन की चञ्चलता भारतीय मानस से कई गुना अधिक होती है। केवल तभी जब वह उससे परे चला जाये, वह लक्ष्य तक पहुँच सकता है, लेकिन उसके लिए यह इतना आसान नहीं होता।

बहरहाल, दूसरी बात के लिए तुम्हारा कहना सही है। “समय को देखते हुए यह स्वाभाविक है” और पाश्चात्य मानसिकता चारों तरफ़ फैली हुई है। शायद यह भी ज़रूरी है कि धरती की चेतना में किसी भी तरह की अतिमानसिक उपलब्धि के सम्भव होने के पहले इस मानसिकता का सामना करके इस पर विजय पायी जाये, क्योंकि आध्यात्मिक चीज़ों के प्रति भौतिक मन का मनोभाव ही मायने रखता है और चूँकि, इसके पहले कि इस योग की प्रक्रिया के अनुसार मन के पार जाया जा सके, जड़-भौतिक के प्रतिरोध को जीतना ज़रूरी है; इसीलिए मन की प्रबलतम सम्भव कठिनाइयों को जीतना अनिवार्य था।

निम्न 'प्रकृति' मुझे एक बड़ी व्हेल की तरह लगती है जिसने शरीर, प्राण और मन को निगल लिया है—वे सब उसके शिकंजे में हैं। उससे निकलने की प्रक्रिया है, पहले सिर (मानसिक सत्ता) फिर बीच का हिस्सा (उच्चतर प्राण), उसके बाद निचले हिस्से। शायद यहाँ कई नाभि के स्तर तक ऊपर निकल आये हैं, लेकिन निचसे हिस्से अभी तक व्हेल के जबड़ों में फँसे हैं। जब वे निकल जायेंगे तब उन्हें “मुक्ति” मिल जायेगी।

यह एकदम से सही है; यही सच्चा क्रम है।

१४ फ़रवरी १९३५

‘द’ और ‘स’ के साथ ‘क’ को कुछ कठिनाई है, और जब ‘द’ ने उसकी बात का जवाब ढंग से नहीं दिया तो वह बीमार पड़ गयी। मैंने उसे समझाया कि ‘द’ की बात का उसे इस तरह बुरा नहीं मानना चाहिये।

“ढंग से जवाब नहीं दिया” का क्या मतलब है? क्या इसका यह मतलब नहीं है कि “उसकी इच्छा के अनुसार” जवाब नहीं दिया?

मैंने ‘क’ से दो-तीन बातें कहीं। (१) वह सवेरे ८ से ९ तक काम करती है, दोपहर १ से शाम ५ तक, फिर ७.३० से ८.१५ तक। मैंने उससे पूछा कि वह पढ़ती क्या है—वह बहुत ही कम पढ़ती है। मैंने उससे कहा कि उसकी उम्र में श्रीमाँ चाहेंगी कि वह कुछ अधिक अध्ययन करे और मैंने उससे विज्ञान, भूगोल इत्यादि पढ़ने के लिए कहा।

मुझे सन्देह है कि उसके लिए पढ़ाई करना बहुत लाभदायक होगा या नहीं—मेरा मतलब है, बड़े पैमाने पर।

(२) मैंने उससे कहा कि 'च' और 'स' के संग की बजाय वह ज़्यादा 'ल' और 'ट' के साथ रहे। मैंने उसे 'च' के कुछ दोष बतलाये जो सचमुच उसके अन्दर भी चले गये हैं, और उसने उन्हें एकदम स्पष्ट देखा भी।

यह ठीक है।

(३) 'अ' या किसी ऐसे के साथ जो अंग्रेज़ी बोलता है और चीज़ें अच्छी तरह जानता है, एक घण्टा बिताना उसके लिए बहुत अच्छा होगा, वह विभिन्न विचारों के बारे में जान पायेगी। उसकी याददाश्त अच्छी है, वह बुद्धिमती है, और उचित परिवेश में वह अच्छी तरह खिल सकती है। निस्सन्देह, भोजनालय का काम साधना की दृष्टि से उसके लिए लाभकारी है, लेकिन एक बार आपने लिखा था कि वह साधना करने के लिए बहुत छोटी है। इसलिए मैंने सोचा कि उसे पढ़ने की ज़्यादा ज़रूरत है।

'क' जैसी किशोरी के लिए 'अ' के साथ की मैं सलाह नहीं देता और उसके विचार बहुत ज़्यादा दुनियादारी वाले हैं जो 'क' के लिए ठीक नहीं रहेंगे। अगर उसे अपने-आपको साधना के लिए तैयार करना है तो काम करके ही वह यह कर सकती है। मेरे कहने का मतलब यह है कि अभी वह अनुभूतियाँ पाने या महान् आन्तरिक प्रयास करने के लिए तैयार नहीं है।

'क' कहती है कि 'ल' से बातें करने में उसे शरम आती है क्योंकि सामान्यतः 'ल' बहुत कम बोलता है। तो मैं अपने स्वाभाविक जोश के साथ उसे 'ल' के पास ले गया। 'ल' ज़रा उलझन में पड़ गया और बाद में उसने मुझसे कहा कि मैं 'क' की अच्छी बातों का इतना प्रचार क्यों कर रहा हूँ। मुझे तो उसकी अच्छाइयों को श्रीमाँ की तरफ़ मोड़ना चाहिये... मैंने जवाब में कहा कि कभी-कभी हममें से किसी के द्वारा आया हुआ कोई अच्छा सुझाव या शब्द दूसरों की मदद कर सकता है। आख़िरकार, रूपान्तर की महान् प्रक्रिया में, हर एक ईंट की अपनी उपयोगिता है। भले किसी ने थोड़ा ही प्राप्त किया हो, लेकिन उस थोड़े का भी उपयोग वह दूसरों की मदद करने में कर सकता है या कम-से-कम उन्हें यह दिशा तो दे ही सकता है कि वे उचित संग या उचित प्रक्रिया को अपनायें। लेकिन 'ल' का हमेशा से मुझ पर यही आरोप रहा है कि दूसरों की मदद करने से पहले मुझे स्वयं पूरी तरह साधना में डुबकी लगानी चाहिये।

इस मामले में दो मनोभाव अपनाये जा सकते हैं और दोनों का अपना महत्त्व है। 'ल' के मनोभाव के लिए बहुत कुछ कहा जा सकता है—पहला, जब तक कि व्यक्ति की अपनी सिद्धि पूर्ण नहीं हुई हो तब तक वह जो कुछ सहायता देगा वह कुछ सन्देहास्पद और अपूर्ण होगी और दूसरा, दूसरों की सहायता करने के लिए अनुभवी योगी बहुत बार उनकी कठिनाइयों को अपने ऊपर लेने का खतरा मोल लेने पर उतारू हो जाते हैं। लेकिन, साथ ही, पूर्णता के लिए प्रतीक्षा करना हमेशा सम्भव नहीं होता।

१५ फ़रवरी १९३५

क्या सभी कामुक-गतियाँ उन शरीरहीन कामुक-सत्ताओं से उत्पन्न होती हैं जो "अपने उपभोग के लिए भौतिक आधार और सहारा चाहती हैं?" क्या प्राण-जगत् में पृथक् कामुक-सत्ताएँ हैं या फिर प्राण-जगत् की गतियों में से कामना-वासना की भी एक गतिविधि है?

ठीक-ठीक ऐसा नहीं है कि ये पृथक् सेक्स-सत्ताएँ हैं, लेकिन प्राण-जगत् में ऐसी सत्ताएँ हैं जिनमें कामना-वासना की गतियाँ प्रमुख होती हैं।

यह कहना बहुत ज़्यादा होगा कि सभी सेक्स-गतियाँ इसी तरह उत्पन्न होती हैं। वे जो व्यक्ति की मानसिक स्वीकृति के बिना अन्दर घुस आती हैं, ऐसी होती हैं, और साथ ही सपनों में देखी हुई कई चीज़ें भी इन्हें उभार लाती हैं।

१६ फ़रवरी १९३५

—श्रीअरविन्द